"महावीर के अधर मौन है, पर स्वय महावीर का जीवन मुखर है। शान्ति उनकी आभा है और वीतरागता उनका जीवन। चलते वक्त चरणों मे स्वर्ण-कमलो का बिछना, स्वर्ण-रत्न के समवशरण रचना—ये सब तो भक्तों की भक्ति का अतिशय है। वस्तुत महावीर निस्पृह है, वीतराग है। आत्मा ही उनकी सम्पदा है। परमात्मा ही उनका स्वरूप है, गुरु भी अपने वे ही है। उनका भगवान् भी उनमे ही साकार हुआ है। उनकी भगवत्ता फैली है चहुँ ओर, सब ओर। ज्योति कलश छलके।

—ललितप्रभ

ज्योति कलश छलके

(महावीर वाणी)

महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

श्री जितयशा फाउंडेशन, कलकत्ता
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

ज्योति कलश छलके/ ललितप्रभ

प्रकाशक
श्री जितयशा फाउडेशन,
रूम न २८
९सी, एस्प्लानेड रो (ईस्ट)
कलकत्ता-६९

प्राकृत भारती अकादमी,
यति श्यामलाल जी का उपाश्रय
मोतीसिह भोमियों का रास्ता
जयपुर (राजस्थान)

प्रेरणा
गणिवर श्रीमहिमाप्रभ सागरजी

सौजन्य
श्रीमती चन्द्रकान्ता सुजानमल नागौरी,
इन्दौर

प्रकाशन वर्ष दिसम्बर १९९३

मूल्य **40** रुपये

मुद्रक/टाईपसेटिंग
अप्सरा फाईन आर्ट, इन्दौर

सम्यक्त्व की शाश्वत प्रतिमा

साध्वी विश्वदर्शनाश्री

को

(देह-विलय ३ १२ ९३, सम्मेतशिखर)

प्रकाशकीय

श्री जितयशा फाउडेशन एव प्राकृत भारती अकादमी के 'सयुक्त प्रकाशन' मे 'ज्योति कलश छलके' नामक प्रवचन-पुस्तक को प्रकाशित करते हुए हमे प्रसन्नता है।

पुस्तक मे विश्रुत विद्वान महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी द्वारा भगवान महावीर के कतिपय लोकोपयोगी सूत्रो पर दिये गये प्रभावी प्रवचनों का महत्वपूर्ण सकलन है। प्रवचन के क्षेत्र मे महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी का अपना स्थान है। शास्त्रीय चेतना के साथ युगीनता एव मनोवैज्ञानिकता का जो प्रयोगधर्मी रूप उनके प्रवचनो मे प्राप्त होता है, वह उनकी प्रभावकता को परिपुष्ट करती है। मानवता की धुरी पर केन्द्रित उनका चिन्तन-मनन व्यक्ति की अतश्चेतना को जागृत और पवित्र करने पर जोर देता है।

अपने इन प्रवचनो मे मनीषी सत ने जनसमुदाय को सेवा, भाईचारा, मानवता और सत्य की उपासना पर बल दिया है, वही तनाव-मुक्ति, मानसिक एकाग्रता, ध्यान और आत्म-शुद्धि के लिए भी परामर्श दिया है। निश्चय ही ग्रन्थ की उपयोगिता सार्वजनीन है। किसी वर्ग विशेष के लिए नही वरन् हर कौम, हर आदमी के लिए ये प्रवचन प्रशस्त मार्गदर्शक, ज्ञानवर्धक और मगलकर है।

समर्पित है पाठक-वर्ग को महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी का स्वस्तिकर लेखन, हमारा अभिनव प्रकाशन।

डी आर मेहता,	प्रकाश दफ्तरी
सचिव	सचिव
प्राकृत भारती अकादमी,	जितयशा फाउडेशन
जयपुर	कलकत्ता

अनुक्रम

महावीर का मौलिक मार्ग

"माना कि धर्म की अपनी मर्यादाएँ होती है और प्रत्येक धार्मिक को उन मर्यादाओ का पालन करना चाहिए पर, यह नही भूलना चाहिये कि प्रत्येक युग की भी अपनी मर्यादाएँ होती है और उसके चलते आवश्यक संशोधन न केवल रख-रखाव मे अपितु, आचरण-सहिता मे भी होना चाहिए, ताकि धर्म और जीवन, शास्त्र और आचरण, कथनी और करनी का फर्क न रहे।"

महावीर चैतन्य के शिखर है, अध्यात्म के गौरीशकर। इसलिए इस चैतन्य-शिखर पर हमे नाज होना चाहिए। महावीर ने साधना-मार्ग मे गगनचुम्बी मीनारो को छुआ है, अगर यह कहूँ कि उससे भी दो कदम आगे बढाए है तो ठीक होगा। इसलिए महावीर मात्र दार्शनिक नही, अपितु अमृत साधक-पुरुष है। उन्होने जिन्दगी को सच मे जिया है। ऐसा जिया है, जिसे हम प्रकाश का जीना कहते है। महावीरत्व उनके रोम-रोम मे समाया था और वर्धमान उस अर्थ को साथ लिये चलता था, जिसमे रुकावट का कभी नामो-निशान भी न हो। महावीर और वर्धमान– ये दोनो नाम केवल नाम तक ही एक-दूजे के पर्याय हो ऐसा नही है, वास्तव मे इन दो शब्दो मे एक जीवन-शैली प्रगट हुई है।

अगर हम महावीर की गाथाओ को छुएँ, तो उनके वक्तव्यो मे दार्शनिक भाषा कम जीवन की भाषा अधिक दिखायी देगी। बिल्कुल साफ-सुथरे और जीवन के साथ सीधा तालमेल बिठाने वाले है महावीर के वचन। उनका उपदेश वही होता था जो जीवन मे अनुभूत हो। इसलिए महावीर, जीवन और सिद्धान्त तीनो एक-दूजे के पर्याय और परस्पर पूरक है।

महावीर के अनुसार उपदेश वही देना चाहिए जिसका स्वय के जीवन के साथ सीधा तालमेल हो। केवल भाषणबाजी व तर्क-वितर्क हमारे शास्त्रीय ज्ञान को प्रदर्शित कर सकते है, लेकिन जीवन के साथ उनका दूर का भी रिश्ता नही जुड पाता। जीवन का साधना-शून्य होना और किताबी ज्ञान प्राप्त कर सिद्धान्तो का प्रतिपादन करना मूलत तो आत्म-प्रवचना ही है। स्वय अतिक्रमण करेगे और दूसरो को प्रतिक्रमण मे जीने की बात कहेगे, कृत्य पाप के और भाषा पुण्य की– यह सब जीवन का दोहरापन नही तो और क्या है ?

महावीर दोहरेपन के विरोधी है। आचरण-शुद्धि के अभाव मे, महावीर आचार्यत्व पर भी प्रश्नचिह्न लगाने मे सकोच नही करेगे। वह अनुशास्ता किस काम का जो स्वय अनुशासन की अवहेलना करता हो। कथनी और करनी मे ऊँच-नीच न हो इसीलिए महावीर ने

अभिनिष्क्रमण के पश्चात् मौन रखा। तब तक वे चुप्पी साधे रहे जब तक परम ज्ञान को आत्मसात् न कर लिया। प्रव्रजित होने के पश्चात् ऐसे अनेक अवसर आये जब महावीर को प्रवचन देना चाहिये था, पर महावीर ने मौन रखना उचित समझा।

महावीर के अधर मौन है, पर स्वय महावीर का जीवन मुखर है। शान्ति उनकी आभा है और वीतरागता उनका जीवन। चलते वक्त चरणों मे स्वर्ण-कमलों का बिछना, स्वर्ण-रत्न के समवशरण रचना—ये सब तो भक्तों की भक्ति का अतिशय है। वस्तुत महावीर निस्पृह है, वीतराग है। आत्मा ही उनकी सम्पदा है। परमात्मा ही उनका स्वरूप है, गुरु भी अपने वे ही है। उनका भगवान् भी उनमे ही साकार हुआ है। उनकी भगवत्ता फैली है चहुँ ओर, सब ओर। ज्योति कलश छलके।

महावीर के वचन कोरे अधेरे मे चलाये हुए तीर नही है। ये सब वे वचन है, जो सत्य के सान्निध्य मे स्वर्ण-सूत्र बने है। महावीर का एक भी वक्तव्य, ऐसा प्राप्त नही होता है जो उन्होने परमज्ञान को प्राप्त करने से पहले कहा हो। सत्य कहा जाना चाहिए, लेकिन सुनी-सुनायी बातो के आधार पर नही। वह सत्य सौ फीसदी प्रामाणिक कैसे हो सकता है जो अनुभव के दायरे से न गुजरा हो। इसीलिए राम का सत्य राम का है और कृष्ण का सत्य कृष्ण का, महावीर और बुद्ध का सत्यानुभव उनका अपना था। किसी ने किसी का अनुकरण नही किया। अनुभूति भी अपनी रही और अभिव्यक्ति भी अपनी। सब स्वतन्त्र अस्तित्व है और सबके अनुभव भी स्वतत्र, अभिव्यक्ति की शैली भी स्वतन्त्र।

महावीर ने बारह वर्ष तक साधना की— एकान्त, मौन और ध्यान तीनो से गुजरे। फिर जो जाना, उसे कहा। सच तो यह है कि इन बारह वर्षों की साधना का परिणाम ही आगम है। महावीर ऐसे सत्य को भी कभी अभिव्यक्त करना नहीं चाहते थे, जो अनुभव के गलियारो से न गुजरा हो। इसलिए महावीर की ये छोटी-छोटी प्यारी-सी गाथाएँ सत्य, धर्म और साधना का सार है।

अपनी वर्षों की साधना के पश्चात् महावीर ने सत्य की प्रभावना की, दुनिया मे बॉटा। यदि सत्य को जानने के बाद भी दुनिया मे न बॉटा गया, तो सत्य अपनी विराटता खो सकता है। इसलिए महावीर

ने दुनिया को मार्ग दिया, वह मार्ग जिस पर वे चल चुके थे, जिससे मंजिल हासिल कर चुके थे। उन्होने अनुसरण और अनुकरण की भाषा नही कही, अपितु मात्र दिशा-निर्देश दिया और सभी को खोज करने की प्रेरणा और स्वतन्त्रता दी।

धार्मिक जगत् मे व्यक्ति-व्यक्ति को स्वतन्त्रता देना महावीर का लक्ष्य था। उन्होने इन्सान को कभी ईश्वर की कठपुतली नही बनने दिया कि जैसे ईश्वर नचाता जाये वैसे इन्सान नाचता जाये। महावीर ने सर्वप्रथम, व्यक्ति को साम्प्रदायिक कट्टरता से मुक्त करने की कोशिश की, क्योकि साम्प्रदायिकता मे जकडा व्यक्ति सत्य की खोज नही करता, वह पूर्वाग्रहो से ग्रस्त होता है। उसके लिए वह झूठ भी सच होता है, जो उसके सम्प्रदाय मे मान्य हो। वह सत्य को ग्रहण नही करता, अपितु उस तथाकथित सत्य के लिए भी कदाग्रह करता है। 'अपना सच पराया झूठ' यह साम्प्रदायिक व्यामोह नही तो और क्या है ?

महावीर के अनुसार तो सत्य और धर्म हर स्थान पर है, हर मजहब मे है। इसे किसी सम्प्रदाय विशेष की बपौती नही बनाया जा सकता। उनके अनुसार, तुम अपने धर्म का पालन करो और इसके लिए स्वतन्त्र भी हो, पर अपनी मान्यताओ को दूसरो पर थोपने का प्रयास क्यो करते हो? इसीलिए महावीर ने अपने शिष्यो को आदेश नही, उपदेश दिया। जैन आगम महावीर के आदेश नही है, उपदेश है। आदेश, दूसरो पर अपनी मान्यताओ का बलात् आरोपण है और उपदेश प्रेरणा है। माने न माने—सब कुछ सामने वाले पर निर्भर। आदेश अर्थात् करो और उपदेश अर्थात् करना चाहिए। उपदेश अपने सिद्धातो का प्रतिपादन करते हुए दूसरे की स्वतत्रता को सुरक्षित रखना है, जबकि आदेश किसी की स्वतत्रता का दमन है। शिष्य को उपदेश दिया जाता है और गुलाम को आदेश। इसलिए किसी उपदेष्टा को, गुरु या आचार्य को उपदेश देना चाहिए, आदेश की भाषा का उपयोग नही करना चाहिए। गुरु-शिष्य को उपदेश दे और गुरु का उपदेश ही शिष्य के लिए आदेश बन जाये। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को चिरस्थायी रखने का यह अचूक साधन है।

मै उपदेश देता हूँ, अधिक से अधिक स्वीकृति लेकिन आदेश नही। आदेश की भाषा मे मुनि-जीवन की अनेक मर्यादाओ का अतिक्रमण सम्भव है।

महावीर मात्र देश को ही स्वतत्र नही देखना चाहते, वे अध्यात्म के मार्ग मे भी व्यक्ति-व्यक्ति को स्वतत्रता देते है। यहाँ तक कि वे अपने शिष्यो और श्रावको से भी आदेश की भाषा मे बातचीत नही करते है। गुरु वह नही है, जो अहकारी है। जीवन मे विनम्रता ही गुरुत्व की पहचान है। महावीर हमारे लिए आचरण सहिता का निर्माण अवश्य करते है, लेकिन उसके परिपालन के लिए आदेश नही देते है। 'ज सेय त समायरे' यह उनका वह वचन है जो, आध्यात्मिक क्षेत्र मे महावीर द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को स्वतत्रता दे रहा है। इसलिए आध्यात्मिक जगत मे महावीर को स्वतत्रता का हिमायती माना जाना है। महावीर के अनुसार व्यक्ति सुनकर सत्य को जानता है और सुनकर ही असत्य को। सत्य-असत्य दोनो को जान-समझ लेने के पश्चात व्यक्ति को जो मार्ग श्रेयस्कर लगे उस पर अपने कदम बढाने चाहिये।

मेरी नजर मे महावीर असाम्प्रदायिक मत्र के दाता है, सर्वधर्म समभाव के पक्षधर है। सम्प्रदाय मे निर्णय अनुयायी के हाथ मे नही, अनुशास्ता के हाथ मे होता है। जबकि अध्यात्म मे निर्णय की क्षमता, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पैदा की जाती है। जब तक हम किसी का अनुसरण करते रहेगे, लकीर के फकीर बने रहेगे, तब तक मुक्त कैसे हो पायेगे। उस आचरण से भी अन्त मे व्यक्ति को क्षोभ होता है जो किसी और का गढा-गढाया है। वहाँ आचरण-सहिता तो होगी पर लीक से हटकर नही। फिर व्यक्ति मुहर तो उसी आचरण की लगाये रखेगा, पर अपने जीवन को उसके अनुकूल न पाकर गलियाँ ढूँढेगा। इसलिए महावीर ने औरो पर शासन का निर्देश नही दिया, पर उनकी परवर्ती शिष्य परम्परा ने उनके सकेतो को ही अनुशासन की सज्ञा दे दी।

समय की मार ने सारी दुनिया को बदल दिया। महावीर के युग मे और आज के युग मे बेहद फर्क है, पर अनुशासन, नियम-निर्देश सब कुछ वही का वही।

समय के चलते आचरण मे फर्क हुआ, लेकिन आचार सम्बन्धी अनुशासन-सहिता वही की वही रही। परिणाम यह हुआ कि शास्त्रीय निर्देशों/मर्यादाओ और वर्तमान के आचरण मे लम्बा फासला हो गया। हम आवश्यकतानुसार अनुशासन-सहिता को न बदल पाये मात्र उसमे से गलियारे निकालते गये परिणाम यह हुआ कि एक-पर-एक अनेक नियम ताक मे रख दिये गये। शास्त्र और जीवन, कथनी और करनी

विकास के पक्षधर है—सर्वप्रथम दर्शन-शुद्धि, फिर विचार-शुद्धि और फिर जीवन-शुद्धि। निर्वाण इन तीनो का समवेत परिणाम है।

महावीर ने कहा दर्शन के बिना ज्ञान नही होता, बात महत्वपूर्ण है। साधना के मार्ग मे ज्ञान-चारित्र से भी पूर्व दर्शन को आत्मसात् करना अनिवार्य है। दर्शन-शुद्धि के अभाव मे ब्रह्मचर्य का नियम तो होगा, लेकिन वासना की तरगे फिर भी जीवित रहेगी। क्षमा मॉगने की प्रवृत्ति तो होगी, पर क्रोध निस्तरग नही हो पाएगा। अत महावीर दर्शन-विशुद्धि पर ज्यादा जोर दे रहे है। अगर नजरे निर्मल नही है तो सब कुछ बेकार। जिसकी जैसी नजरे होती हैं, दुनिया उसको वैसी ही नजर आती है। दीवार भले ही सफेद हो पर, जिसने काला चश्मा लगा रखा है उसे तो वह भी काली ही दिखाई देगी। दुनिया कहेगी दीवार सफेद है पर, उसका कदाग्रह काली पर ही होगा।

महावीर इसी काले चश्मे को उतारना चाहते है, ताकि सच को सच और झूठ को झूठ रूप मे देखा जा सके। इसीलिए वे साधक की हथेली मे सम्यक्-दर्शन का दीप थमा रहे है, ताकि वह सत्-असत का विवेक कभी खोए नही। महावीर, गीता के कृष्ण की तरह, यह कभी नही कह सकते कि दुनिया भर के पाप करके मेरी शरण मे आ जा, मै तुम्हे तार दूँगा। महावीर की नजरो मे यह पुरुषार्थहीनता है। जब पाप स्वय ने किये है तो उनसे छुटकारे की गुहारे परमात्मा से क्यो? यह तो ऐसा हुआ जैसे कि बधे अपने हाथो से, छुटकारे के लिए प्रार्थना औरो से। जिस पाप से छूटने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हो, तो क्या पाप करने से पहले परमात्मा से परामर्श लिया था कि पाप किया जाये या नही।

इसलिए बेहतर होगा हम निष्पाप होने के लिए, खुद निर्विकार होने का प्रयास करे। जीवन सस्कार के लिए पहली आवश्यकता सम्यग्-दर्शन की है। सम्यग्-दर्शन के अभाव मे ज्ञान भी सौ फीसदी सम्यग् नही बन पायेगा। एक बात तय है कि जब तक ज्ञान सही नही होगा, चारित्र भी जीवन का मौलिक सृजन नही, अपितु अन्धानुकरण होगा। अन्धानुकरण मे भला कभी आत्म-अनुसन्धान होता है? वहॉ केवल रटी-रटायी बाते होती है, भेडचाल होती है।

महावीर सत्य को ऑखो से दिखलाना और प्रज्ञा से अनुभव कराना चाहते है। ऑखो देखी सो सच्ची, कानो सुनी सो झूठी। ऑखो से देखी

बात सच मानी जाती है और कानो से सुनी बात झूठी । इसलिए मुझसे अगर कोई किसी के बारे मे कुछ कहे तो, मै सबसे पहले यही पूछता हूँ—'क्या यह सब तुमने ऑखो से देखा ?' अगर नही, तो सुनी-सुनायी बातो पर शिकायत करना, कच्चे कान वालो की निशानी है । जो सुनी-सुनायी बातो पर विश्वास करते है, वे कानो से कच्चे है ।

दर्शन से ज्ञान और चारित्र का प्रक्षालन होता है । एक ज्ञान किताबी होता है और एक अन्तर् से निष्पन्न । दोनो मे फर्क है । जो ज्ञान अन्तर से निष्पन्न होता है, वह जीवन का ज्ञान है । यह भीतर विराजे शिव के तीसरे नेत्र का उद्घाटन है ।

जैसे बच्चे के पैदा होने पर, दो अन्य चीजे भी पैदा होती है—'माँ' और 'दूध', वैसे ही दर्शन-विशुद्धि होने पर ज्ञान एव चारित्र भी मुखर होता है । जब बच्चा पैदा होता है, तो मात्र अकेला बच्चा ही पैदा नही होता, स्वय 'मॉ' पैदा होती है और पैदा होता है मॉ का दूध । वैसे होने मे तो परखनली मे बच्चा पैदा हो जाएगा, पर ऐसा करने से मातृत्व पैदा नही होगा, छाती मे दूध नही होगा । मातृत्व की अनुभूति ही सन्तान के जन्म का मुख्य गौरव है ।

दर्शन के अभाव मे प्राप्त ज्ञान और चारित्र परखनली मे बच्चा पैदा करने के समान है । वहॉ मस्तिष्क मे जानकारियॉ ढेर सारी होगी, देखा-देखी आचरण भी होगा, लेकिन अन्तर्-दृष्टि नही खुल पाएगी, अन्तर्-जीवन मे अध्यात्म की सुवास नही होगी ।

आज हम महावीर के साधना क्रम के ठीक विपरीत चल रहे है । सभी चारित्र अगीकार करने पर जोर दे रहे है । शिष्य-वृद्धि का लोभ सवरण न कर पाने के कारण प्रव्रज्याएँ तो बहुत हो जाती है, पर ऐसे लोग जीवन को आध्यात्मिक बनाने के नाम पर शून्य रह जाते है । महावीर दर्शन, ज्ञान और चारित्र का क्रम देते है । हमने इसके विपरीत मार्ग अपना लिया । पहले चारित्र, फिर ज्ञान, फिर कही दर्शन। परिणाम यह होता है कि दीक्षा के नाम पर वेश परिवर्तन हो जाता है, दो समय प्रतिक्रमण या सध्या-वदन के पाठ बोल लिये जाते है, केश लुचन और पद-विहार भी हो जाता है, लेकिन भीतर का जो परिवर्तन होना चाहिये, वह नही हो पाता । पहले पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, माता-पिता का मोह था अब गुरु और सम्प्रदाय का मोह हो गया । पहले धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा का अहकार था अब जप-तप, पद-प्रतिष्ठा या चारित्र-पालन का अहकार

कर बैठे। पहले पति-पत्नी, बच्चो पर क्रोध करते थे अब शिष्य-श्रावको पर करने लगे। परिवर्तन कहाँ हुआ! यह तो स्थानान्तरण हुआ। पात्र बदल गये पर रग नही बदला। क्रोध, मान, माया, लोभ सब कुछ जीवित रह गये। दीक्षा महज वेश परिवर्तन नही है, अपितु जीवन परिवर्तन की वह साधना है जिसमे अशुभ विगलित होता है, शुभ की ओर कदम बढते है, जिसकी मजिल शुद्धत्व है।

दीक्षा को मात्र वेश-परिवर्तन तक ही सीमित न रखे। सर्वप्रथम दर्शन-विशुद्धि की दीक्षा होनी चाहिये फिर ज्ञान-शुद्धि तत्पश्चात् चारित्र-विशुद्धि की। सच मे तो यही जीवन-विशुद्धि का राजमार्ग है। मनोदृष्टि की निर्मलता के अभाव मे, हमारा ज्ञान हमे सही रास्ते पर अडिग नही रख पायेगा और बिना सही ज्ञान के हमारे आचार व्यवहार का कोई आदर्श नही होगा। हम अपना अन्तर सुधारे ताकि बाहर ऐसा कुछ परिवर्तन हो जिसे हम जीवन कह सके। दर्शन-शुद्धि के बाद ज्ञान की उपलब्धि ठीक वैसे ही है, जैसे नौ माह गर्भ का भार सहन करने के बाद पुत्र की उत्पत्ति।

एक बात और समझने जैसी है कि ज्ञान केवल सत्य का करना ही पर्याप्त नही है, असत्य का भी ज्ञान होना आवश्यक है। जब तक झूठ को झूठ रूप मे नही जानेगे, तब तक सच की सही पहचान नही हो पायेगी। ज्ञान आखिर ज्ञान है, चाहे असत्य का ज्ञान हो चाहे, सत्य का। अधा व्यक्ति मात्र दूसरो को ही नही देख सकता, ऐसी बात नही है, वह अपने-आपको भी नही देख पाता है। अगर वह किसी अन्य सहारे से स्वय का अनुभव भी करता है तो वह अपूर्ण माना जायेगा।

महावीर के अनुसार ज्ञान दर्शन के साथ हो। वे दोनो को आत्मसात् करने की प्रेरणा दे रहे है। उनके अनुसार बिना दर्शन के ज्ञान सम्यग् होना सम्भव नही है, 'ना दसणिस्स नाण'—दर्शन के बिना ज्ञान नही होता। जैसे बिना दो पहियो के गाडी नही चल सकती, बिना दो पटरी के रेल नही सरक सकती वैसे ही बिना दर्शन और ज्ञान के जीवन-विशुद्धि नही हो सकती।

साधना के मार्ग मे सर्वागीण विकास के लिए बहुआयामी परिश्रम करना होता है। वह माँ भी, माँ कहलाती है जो नौ माह तक गर्भ का भार वहन करती है और वह औरत भी माँ कहलाती है जो किसी अन्य के जाये को अपना बेटा मानती है, पर इसमे फर्क है। बच्चा पैदा करके

माँ हुआ जाता है और गोद लेकर माँ माना जाता है। ऐसे तो एक वन्ध्या भी माँ कहला सकती। लेकिन वह अपने भीतर के मातृत्व का, दूध घुला वात्सल्य पैदा नही कर सकती। वहाँ छाती का खून, दूध नही बन पाता।

महावीर आज के सूत्र मे यही सब कुछ बता रहे है। उनके मार्ग मे बाह्य-आचरण और शास्त्र-अभ्यास का मूल्य है, पर उससे भी ज्यादा शुद्ध श्रद्धा का मूल्य है, सम्यग्-दर्शन का मूल्य है। सच तो यह है कि सम्यग्-दर्शन ही साधना का प्रथम चरण है और वही अन्तिम। बिना सम्यक्त्व के अनेक भवो मे किया गया चारित्र का पालन भी सार्थक परिणाम नही दे पायेगा।

महावीर कह रहे है 'दर्शन के अभाव मे ज्ञान नही होता।' ऐसा नही है कि महावीर यह बात केवल इस सूत्र या गाथा मे कह रहे हो, हकीकत तो यह है कि महावीर की प्रत्येक गाथा या आगम सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए ही प्रेरित करते है। दर्शन-विशुद्धि के अभाव मे की जाने वाली समस्त क्रियाएँ, अधेरे मे थेगले लगाने के समान है।

सम्यग्-दर्शन का सदेश देकर महावीर सर्वप्रथम हमारी मानवीय दृष्टि को निर्मल करना चाहते है। जैसी नजरे होती है, नजारा वैसा ही नजर आता है। पवित्र निगाहे जहाँ सदा पवित्रता ढूँढती है, वही अपवित्र निगाहे सदा अपवित्रता। हस-दृष्टि जिस पानी मे मोती ढूँढता है उसी पानी मे बगुला-दृष्टि मछली ढूँढता है। निगाहो का ही तो यह फर्क है कि एक ही व्यक्ति किसी को सज्जन प्रतीत होता है और किसी को दुर्जन। कोई महावीर मे महावीरत्व, बुद्ध मे बुद्धत्व और ईसा मे ईश्वरत्व ढूँढ लेता है, तो कोई उन्ही मे वह सब कुछ पाता है कि उनके कानो मे कीले गाडता है, वेश्याओ के साथ उनके नाम जोडता है, शूली पर लटकाता है। दृष्टि का ही तो यह फर्क है कि कोई राम मे रमण करता है, कृष्ण का कीर्तन करता है तो कोई रावण या कस बनकर उन्ही की शक्ति को ललकारता है।

गौतम और गौशालक दोनो ने महावीर का सामीप्य पाया, युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनो ने कृष्ण का सान्निध्य पाया, लेकिन महावीर की महावीरता और वीतरागता को तथा कृष्ण के कर्मयोग को गौशालक और दुर्योधन नही पहचान पाये। यह पहचान तो गौतम और युधिष्ठिर जैसे लोगो के लिए ही सभव है। अगर दुर्योधन इस दुनिया मे सज्जन

ढूँढने जाएगा, तो एक भी नही मिलेगा और यदि युधिष्ठर दुर्जन ढूँढने जाएगा, तो उसे सम्पूर्ण विश्व मे एक भी दुर्जन दिखाई नही देगा। जो जैसा स्वय होगा, दुनिया को वह वैसा ही पाएगा।

आवश्यकता है सर्वप्रथम स्वय को निर्मल करने की, अपनी नजरो को पवित्र करने की। स्वय की पवित्रता ही अन्तर-अमृत को सुरक्षा प्रदान कर सकेगी। शुभ को आत्मसात् करने के लिए अशुभ से छुटकारा पाना होगा। विष के घडे मे डाला गया अमृत क्या अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख पाएगा ?

यह महावीर की विशेषता है कि वे अमृत उडेलने से पहले पात्र का प्रक्षालन कराते है, अन्यथा रद्दी की टोकरी मे जो कुछ डाला जाएगा, रद्दी बन जाएगा। सम्यग्-दृष्टि के अभाव मे ज्ञान प्राप्त कर व्यक्ति तर्क बुद्धि मे तो पारगत हो जाएगा, पडित भी कहला लेगा, पर प्रज्ञा-पुरुष नही हो पाएगा, जीवन मूल्यो एव चैतन्य ऊर्ध्वारोहण के सन्दर्भ मे पिछडा हुआ रह जाएगा।

साधना के मार्ग मे दर्शन-विशुद्धि पर जितना जोर महावीर ने दिया, सभवत उतना अभी तक कोई न दे पाया। कही ज्ञानवादी हुए, कही क्रियावादी, पर महावीर तो इन वाद-विवादो से मुक्त है। वाद-विवाद वहॉ होता है, जहॉ व्यक्ति अपने सिद्धातो को सच और दूसरो को झूठ मानता है। यहॉ तो सब कुछ स्वीकार है। सम्यग्-दृष्टि के लिए तो मिथ्या ग्रथ भी सम्यग्-शास्त्र बन जाता है। उसके पास तो सम्यग्-दर्शन की ऐसी फिल्टर मशीन है जो गन्दगी को अलग कर जल को स्वच्छ कर देती है।

सम्यग्-दर्शन के अभाव मे, महावीर की दृष्टि मे, ज्ञान और चारित्र की कोई विशेष कीमत नही है। सच तो यह है कि ज्ञान और चारित्र मे प्राण, सम्यग्-दर्शन के ही होते है। बिना प्राण की देह कैसी। कुदकुद ने तो यहॉ तक कहा है-

दसण भट्ठा भट्ठा, दसणभट्ठस्स णत्थि निव्वाण।

सिज्झति चरियभट्ठा, दसणभट्ठा ण सिज्झति ॥

जो दर्शन से भ्रष्ट है, वे भ्रष्ट है। दर्शन-भ्रष्ट व्यक्ति कभी निर्वाण को हासिल नही कर सकता। चारित्र रहित व्यक्ति फिर भी सिद्धत्व

हासिल कर सकता है, लेकिन दर्शन-भ्रष्ट व्यक्ति कभी सिद्धत्व हासिल नही कर सकता ।

महावीर मात्र व्यावहारिक सिद्धान्तो का ही प्ररूपण नही कर रहे है, उससे भी अधिक आत्मसिद्धान्तो की चर्चा कर रहे है । वे आजकल की तरह लीपा-पोती की भाषा प्रयुक्त नही कर रहे है । जो कुछ कह रहे है, जिस विषय मे कह रहे है, तलस्पर्श करके कह रहे है । दुनिया की नजरो मे वह व्यक्ति भ्रष्ट है, जो चारित्र से स्खलित हो गया है । लेकिन महावीर साधना-मार्ग के शिखर-पुरुष है । वे बाह्य-दृष्टि पर उतना ध्यान नही देते है । उनकी नजरो मे वह व्यक्ति और अधिक पतित है जो दर्शन से स्खलित हो गया है ।

जैन-धर्म इस बात को खुल्लम-खुल्ला स्वीकार करता है कि सम्यग्-दृष्टि के अभाव मे जो कुछ होगा, कर्म-बन्धन का कारण बनेगा। वही सम्यग्-दृष्टि से मनुष्य द्वारा किया जाने वाला उपभोग, कर्म-निर्जरा मे सहायक होगा । यही कारण है कि एक व्यक्ति किसी कर्म को करते-करते निर्लिप्त हो जाता है, वही दूसरा व्यक्ति उसी कर्म के सहारे नीचे धसता जाता है ।

सम्यग्-दर्शन का सहारा देकर, महावीर हमे बैसाखी से मुक्ति दिला रहे है । किसी का सहारा लेकर चलना, जीवन की पगुता है । अपनी ऑखे खोलकर, मार्ग का निरीक्षण कर, चलना ही 'चलना' कहलायेगा, चर्या कहलाएगी । वैसे सत्य पथ तक पहुँचने के लिए अनुसरण किया जाना चाहिए, लेकिन अन्धानुसरण नही । अनुसरण के मार्ग मे व्यक्ति आवश्यकता पडने पर, अन्य मार्ग का चयन करने मे स्वतत्र रहता है, लेकिन अन्धानुकरण मे किसी अन्य मार्ग की कल्पना भी नही कर पाता।

सम्यक्त्व के अभाव मे व्यक्ति बाहर से तो नग्न हो जाएगा, लेकिन भीतर अपने को आवरण मे समेटे रखेगा । बाहर से भभूत रमा लेगा, लेकिन अन्तर मे उस मार्ग के प्रति तिल-भर भी श्रद्धा नही होगी । मन्दिर मे जाने के बाद भी, मन के मन्दिर मे कही परमात्मा की छाया तक नही होगी । शिवालय मे जाकर वह घटनाद भले ही कर ले, लेकिन स्वय न शिव होगा, न जीवन मे शिवत्व ।

सम्यग्-दर्शन पहला कार्य तो यह करता है कि व्यक्ति को पूर्वाग्रह से मुक्त करता है । सुनी-सुनायी बाते तो दूर, अगर कोई व्यक्ति शास्त्र का भी आग्रह करता है, तो वह सम्यग्-दर्शन से दूर है। सत्य का आग्रह

नही, सत्य को ग्रहण किया जाना चाहिए। सत्य-स्वीकार ही सम्यक्त्व है।

दर्शन, साधना-वृक्ष का बीज है। जैसा बीज होगा, वैसे ही पत्ते और फल-फूल होगे। क्या वह वृक्ष कभी मधुर फल दे पाएगा, जिसकी जडो मे कडवाहट हो? जिसका उत्स ही अशुभ है, उसका समापन तो अशुभ होगा ही। शुभ परिणाम के लिए शुरुआत का शुभ होना जरूरी है। एक बात स्पष्ट है कि दूषित नजरे, दूसरो मे सदा दोष ही ढूँढती है और पवित्र नजरे पवित्रता। बगीचे मे एक साथ बैठे युवक-युवती किसी को भाई-बहिन नजर आते है, किसी को पति-पत्नी। वे कौन है यह बात गौण है। सवाल हमारी नजरो का है। लोगो की दृष्टि इतनी निम्न-स्तरीय होती है कि किसी भली महिला को भी, कभी किसी के साथ देखकर उसके चारित्र पर प्रश्नचिह्न लगा देते है। कहते है ना कि गिद्ध आसमान मे कितना भी ऊँचा क्यो न पहुँच जाये, वह धरती पर तो माँस ही ढूँढेगा। जैसी नजर होती है, नजारा वैसा ही नजर आता है। कोई मन्दिर मे जाकर भी रूपसियो पर ताक-झाँक करता है और कोई बाजार मे भी परमात्मा को ढूँढ लेता है। आखिर बिल्ली मन्दिर मे जाकर भी तो चूहे ही खोजेगी।

ऐसा ही हुआ। एक बिल्ली किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे भाग लेकर वापस अपने देश पहुँची। पत्रकारो ने पूछा, सम्मेलन मे क्या-क्या हुआ? बिल्ली बोली, वहाँ चर्चाएँ तो बहुत हुई पर मै कुछ सुन न पायी। पत्रकारो ने कहा, जब सुना ही नही तो वहाँ जाने का मतलब क्या हुआ? क्या आप उस समय सम्मेलन मे नही थी? बिल्ली ने अपना सिर खुजलाते हुए कहा– थी तो सही पर मेरा ध्यान वहाँ की महारानी की कुर्सी के नीचे केन्द्रित था।

पत्रकारो ने पूछा, क्यो? क्या वहाँ सम्मेलन से ज्यादा महत्वपूर्ण चीज थी? बिल्ली ने मुस्कुराते हुए कहा– जी! वहाँ एक चूहा बैठा था।

इसीलिए महावीर सम्यग्-दृष्टि पर अधिक जोर देते है। आत्म-साधना के मार्ग मे तो यह सर्वप्रथम आवश्यक है। सम्यग्-दर्शन चेतना मे विहार है। पर से मुक्ति, स्व मे सतुष्टि, इसी का नाम ही तो है सम्यग्-दृष्टि।

महावीर जिसे सम्यग्-दर्शन कहते है, बुद्ध उसी को सम्यक् श्रद्धा कहते है और गीता के कृष्ण उसी को प्रणिपात कहते है। वैसे सम्यग्दर्शन

का सीधा-सा अर्थ हुआ–'एक्सेप्ट बाई सेल्फ' सत्य को स्वीकार करना। ज्ञान और चारित्र को सम्यग् करने के लिए, ऐसा होना आवश्यक भी है। ऐसा होने पर अन्धानुकरण की बजाय अनुसन्धान होगा और जिन-दर्शन, अन्धानुकरण नही खोज का मार्ग है। यहॉ जितनी खोज की जायेगी, तथ्य उघडते जायेगे।

मात्र वेश-परिवर्तन या शास्त्रीय ज्ञान से जीवन-परिवर्तन नही हो सकता। ज्ञान का सम्बन्ध बुद्धि से है, चारित्र का सम्बन्ध शरीर से है जबकि दर्शन का सम्बन्ध हृदय से है। बिना हृदय के शरीर और बुद्धि किस काम के ? वहॉ जो कुछ होगा, विश्वास हो सकता है, श्रद्धा नही हो सकती। बच्चे को परखनली मे पैदा करना अलग बात है और नौ माह गर्भ का भार वहन कर बच्चे को पैदा करना अलग बात है। विश्वास का सम्बन्ध देह से है और श्रद्धा का दिल से। महावीर दिल की भाषा मे बोल रहे है। वे हृदय से हृदय के तार जोडकर व्यक्ति को हार्दिक बना रहे है। आखिर सृष्टि के सम्पूर्ण अस्तित्व को आत्मसात् करना ही तो सम्यग्दर्शन है।

अस्तित्व मे जहॉ-जहॉ सत्य की सम्भावनाऍ है, वहॉ-वहॉ गहरे तक उतरना, सत्य के करीब पहुॅचना है। कुछ तथ्य शास्त्रो से समझे जाते है, कुछ बाते गुरु से जानी जाती है, लेकिन यहॉ कुछ ऐसा भी है जो शास्त्र या गुरु से नही, अपने आप से जाना जाता है। मै कौन हूँ–इसका जवाब गुरु या शास्त्र नही दे पाएँगे। अगर देगे तो भी यह उधार होगा, यहाँ श्रद्धा नही विश्वास होगा। विश्वास टूट भी सकता है लेकिन श्रद्धा कभी टूट नही सकती। इसलिए मै कौन हूॅ का जवाब भी स्वय से पूछे। महावीर जिस सत्य के अनुसन्धान की बात कर रहे, वह सत्य बाहर नही भीतर है। इसलिए उचित यह होगा कि हम शास्त्रो की बजाय अपने-आप मे ढूॅढे, अपने अस्तित्व को।

इस अनुसधान को भले ही महावीर ने दर्शन कहा हो, बुद्ध ने श्रद्धा और शकर ने श्रवण कहा हो, आखिर तीनो ही सत्य पर विश्वास से पूर्व उसका अहसास कराना चाहते है। ज्ञान से पूर्व, दर्शन-विशुद्धि हो। बिना दर्शन के, ज्ञान सम्यग् नही होता, ठीक वैसे ही जैसे बिना शक्कर के दूध मीठा नही होता।

दर्शन विशुद्धि के पश्चात् महावीर चाहते है ज्ञान भी निर्मल हो, क्योकि ज्ञान के अभाव मे चारित्र नही सधता। सत्य को जाने बिना

सत्य का आचरण कैसा ! ज्ञान ही तो वह आधार है जिससे व्यक्ति स्वय मे, स्वयमेव प्रवेश कर जाता है । इसलिए दुनिया मे गुरु का सहारा लिया जाता है, ताकि हम ज्ञान हासिल कर सके । गुरु चारित्र नही देता, गुरु ज्ञान देता है । वह सदेश, जिससे वेश परिवर्तन नही जीवन परिवर्तन हो जाये । इसलिए ज्ञान और गुरु का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । केवल चोटी सौपकर किसी को गुरु नही बनाया जाता है। चोटी हर कोई उतार सकता है, लेकिन अपनी प्रज्ञा से दूसरो की प्रज्ञा जाग्रत करना कठिन कार्य है । गुरु वह है जो ऐसा करने मे सिद्धहस्त है । वह प्रकाशवाही बनकर शिष्य को मार्ग दिखलाता है ।

गुरु ज्ञान का दाता होता है । इसका अर्थ यह नही कि जो शास्त्रो का अभ्यास करवाए वह गुरु है । साधना के मार्ग मे गुरु वह है जो स्वय के अस्तित्व का बोध करवाए । जो अपना दीप भी जलाए और औरो का भी । महावीर जिस ज्ञान की चर्चा कर रहे है, साधना के मार्ग मे वह आत्मज्ञान है । आत्मज्ञान के अभाव मे, मुनि का मुनित्व ही त्रिशकु मे लटकता रह जाएगा । आनन्दघन ने महावीर के भावो को काफी ईमानदारी से पेश किया है—आतमज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्य लिगी रे ।

महावीर कहते है' 'नाणेण विणा न हुति चरण गुणा' – ज्ञान के अभाव मे चारित्र गुण नही होता । ज्ञान आत्मा का स्वभाव है और जब तक आत्मा अपने स्वभाव को उजागर नही करेगी, तब तक अपना बोध भी कैसे कर सकेगी । महावीर ने तो यहाँ तक कहा है 'जे आया से विन्नाणी, जे विन्नाणी से आया' जो आत्मा है वही ज्ञान है और जो ज्ञान है, वही आत्मा है । एक अज्ञानी, वर्षो तक चारित्र का अनुपालन कर कर्मो का क्षय करता है वही, एक ज्ञानी क्षण भर मे उन्ही कर्मो का क्षय कर देता है । ज्ञानी और अज्ञानी के चारित्र पालन मे यही फर्क है कि ज्ञानी चाबी से ताले को खोलता है और अज्ञानी हथौडे से । अज्ञानी मासक्षमण करके भी क्षमा मे नही जी सकता, वही ज्ञानी बिना व्रत, उपवास के ही, क्षमा और समता मे जीवन यापन करता है । मासक्षमण चारित्र नही है, चारित्र क्षमा है । मासक्षमण भी क्षमा मे, समता मे जीने का अभियान है, अगर यह अभियान सफल नही होता है तो व्रत, उपवास, सभी कुछ साधना मार्ग मे मात्र देह दडन तक सीमित हो जाएँगे ।

इसलिए महावीर ने दर्शन, ज्ञान और चारित्र का समवेत साधना मार्ग दिया। ज्ञान जीवन के अनुभवो का निचोड है। जैसे-जैसे अनुभव बढता है, वैसे-वैसे ज्ञान परिपक्व होता है। यह तो सुनी-सुनायी बात है कि अग्नि मे हाथ डालने से हाथ जलता है। ज्ञान वह है, जब व्यक्ति वास्तविकता को स्वीकार करे। अग्नि मे हाथ डालने से हाथ जलता है, यह तथ्य हमारे लिए सत्य तब होगा, जब हम स्वय इसका अनुभव करेगे। किसी बच्चे को दस दफा कह दिया जाये कि अग्नि को मत छूना, क्योकि इससे हाथ जल जायेगा, सभव है वह विश्वास न करे। पर एक दफा उसे अग्नि का स्पर्श कराकर भान करा दिया जाये तो, वह बिना बताये ही समझ जायेगा कि अग्नि मे हाथ डालने से हाथ जलता है।

जैसे-जैसे ज्ञान परिपक्व होता है, वैसे-वैसे चारित्र गुण सधता है। लालटेन पर भला कभी प्रकाश की चिप्पी चिपकानी पडती है। ज्ञान तो ज्योति है। मिटाओ, इससे अनाचरण के अधकार को। गुजारो इसे अनुभव के दायरे से। न तो किताबे मोक्ष दे सकती है और न ज्ञान। ज्ञान पैदा करे अन्तर्मन से। किताबी ज्ञान तो केवल मानचित्र है। इससे यह तो ज्ञान हो जायेगा कि कहाँ हिमालय है और कहाँ रामेश्वरम्, पर हिमालयी बर्फीली हवाओ का आनद और सागर की लहरो की खुशियाँ, किताबे नही दे सकती।

महावीर, बुद्ध, ईसा, इन सबने ज्ञान किताबो से नही पाया, स्वय से स्वय का ज्ञान पाया। इसलिए वे अपने गुरु स्वय बने। वे पडित कम, प्रज्ञा पुरुष अधिक थे। पाडित्य तो हर किसी के पास हो सकता है, लेकिन प्रज्ञा हर किसी की नही सध सकती। पाडित्य अहकार का पोषण करेगा, वही प्रकृष्ट प्रज्ञा ऋजुता को अपनायेगी। बाहर का ज्ञान तो उस झूठी मुस्कुराहट जैसा है जो भीतर रोष होते हुए बाहर खुशी जाहिर करता है।

आज का सूत्र, उस रत्नत्रय को प्रस्तुत कर रहा है जिसे महावीर ने मोक्ष और निर्वाण का साधन माना है। यात्रा का प्रारम्भ श्रद्धा से हो रहा है और समापन निर्वाण की भूमि पर। जैसे सागर मथन कर अमृत निकाला गया था, वैसे ही महावीर ने साधना-मार्ग का मथन कर रत्नत्रय–दर्शन, ज्ञान, चारित्र निकाला है।

ज्ञान वह ज्योति है, जिसे पाकर व्यक्ति स्वय तो प्रकाशित होता ही

है औरो मे भी प्रकाश बॉटता है। वह ज्योतिष्मान् है जो प्रकाशित है, पर वह ज्योति धन्य है जो अनन्त मे लीन होने से पूर्व अनेको मे ज्योति का सञ्चार कर दे। ज्ञान आत्मसात् कर उसे औरो मे बॉटे। बुझे हुए दीपक को धिक्कारने की बजाय, उसे प्रकाशित करने का प्रयास करना चाहिए। वह व्यक्ति प्राप्त विद्या को अक्षुण्ण नही रख पायेगा जो मात्र सचय मे लगा है, यह तो बॉटने के लिए है। अमृत प्राप्त करना कठिन कार्य नही है। देव वह है जो अमृत बॉटता है, जिसने अमृत पाकर दुनिया मे अमृत न बॉटा, वह भला कैसा देव! उसके लिए तो अमृत भी पानी बन जाएगा। इस मामले मे महावीर सदा उदार रहे। पर वे उन लोगो मे से नहीं है जो मात्र 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, आचरहिं ते नर न घनेरे' जैसी उक्ति को चरितार्थ करते हो। महावीर ने उपदेश तब दिया, जब सत्य उनके रोम-रोम मे समा चुका था। एक बात गौरतलब है कि महावीर तब तक पूर्णतया मौन रहे, जब तक उन्होने परमज्ञान हासिल नही कर लिया, लेकिन सत्य को जब सम्पूर्णतया जान लिया, तब वे औढरदानी हो गये। गॉव-गॉव और नगर-नगर मे जाकर प्रेम और शाति के मार्ग को प्रशस्त किया।

ज्ञान, मात्र प्राप्त करने के लिए ही नही है, अपितु बॉटने के लिए भी है। ज्ञानी ही तो वह गुरु है जो औरो को दिशा निर्देश देता है। महावीर के सभी सूत्र तभी कहे गये है, जब उन्होने परमज्ञान-दर्शन प्राप्त कर लिया था। इसलिए महावीर के सूत्र सत्य को प्रगट करने का प्रयास है, मजिल के लिए सकेत है। महावीर की भाषा नकल की भाषा नही है, जो कुछ है, मौलिक है।

दर्शन-विशुद्धि के अभाव मे प्राप्त ज्ञान और आचरण अनुसरणसा होगा। आचरण-शुद्धि जीवन की अनिवार्यता है, लेकिन वह बोधपूर्वक हो। बोध के अभाव मे आचरण विशुद्धि के नाम पर मात्र तपस्याऍ होगी, देह दण्डन होगा। बाहर से देह भले ही ककाल हो जाये पर भीतर मे वासना और तृष्णा वैसी की वैसी रहेगी। ज्ञान प्राप्त करने के लिए सकल्पवान होने से पूर्व आवश्यक है कि हम भीतर को निर्मल करे। यदि जहर सने घडे मे अमृत भी उडेला जायेगा तो, जहर बन जाएगा। यदि हम अमृतवाही बनना चाहते है तो, जहर से मुक्त होना होगा।

महावीर कह रहे है कि बिना दर्शन के ज्ञान नही होता, बिना ज्ञान

के चारित्र नही सधता। ज्ञान केवल ऊपर-ऊपर का न हो। जो ऊपर-ऊपर तैरेगा वह तिनके ही पायेगा। जो गहरे मे उतरेगा वही हीरे-मोती पाएगा। जैसे सागर मे ऊपर-ऊपर तैरने वाला सिवा खारे जल और तिनको के कुछ प्राप्त नही कर पाता, वैसे ही केवल किताबो मे रहने वाला जीवन की भाषा नही सीख पाता। किताबे हमे पडित बना सकती है, लेकिन जीवन की वास्तविकता मात्र पाडित्य या तर्क-वितर्क मे नही है, वह तो जीवन की निर्मलता मे है। पुस्तके प्रेम-सूत्र बना सकती है, लेकिन प्रेम पैदा नही कर सकती। परमात्मा कभी पुस्तको मे पैदा नही हुआ है, उसे पैदा करने के लिए प्रेम की माटी चाहिए—

प्रेम की माटी मे
परमात्मा का फूल खिलता है,
और प्रेम,
डेल कार्नेगी की
किताब मे
नही मिलता है।
जो घर फूँकता है,
साध हो जाता है,
और गाता है
खुद मे रमण करता है,
खुदा हो जाता है,
कबीर की साखी
कोई और नही,
खुद कबीरा है,
वही मसूर है
वही मीरा है।

महावीर के यहाँ जो कुछ सीखा कहा जा रहा है, सब का सम्बन्ध अन्तर्-जगत से है।

एम ए तो हर कोई उत्तीर्ण कर सकता है, लेकिन जीवन की वास्तविकता एम ए एन मैन होने मे है। यदि कोई, शैक्षणिक उपाधियाँ पाकर, मानव नही बन पाया तो उसकी शिक्षा अपूर्ण कहलायेगी। बिना चारित्र का ज्ञान शून्य है और ज्ञान के अभाव मे चारित्र शून्य है।

शिक्षा-दीक्षा दोनो का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मात्र विद्यालयीन शिक्षण को सम्यग्ज्ञान का दर्जा नही दिया जा सकता है, वहाँ तो जो कुछ रटा जायेगा बस मस्तिष्क मे वही होगा।

मैने सुना है, एक छात्र किसी पुस्तक विक्रेता से 'रेपीडेक्स इग्लिश स्पीकिग कोर्स' खरीदने गया। पुस्तक दुकान मे उपलब्ध नही थी, अत विक्रेता ने कह दिया, 'आउट ऑफ स्टॉक।' छात्र को यह वाक्य-विन्यास काफी सुहाया। उसने सोचा, मै भी किसी अनुपलब्ध वस्तु के लिए यही कहूँगा।

एक दिन वह छात्र घर की सीढियो पर बैठा था, किसी ने आकर पूछा—घर मे डैडी है। छात्र ने वही रटा-रटाया जवाब दिया, 'आउट आफ स्टॉक।'

यह आधा-अधूरा और अधकचरा ज्ञान है। ज्ञान हो सागर-सा गम्भीर। परिपक्व ज्ञान की स्थिति के लिए ही तो श्रीकृष्ण ने कहा था 'ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेर्जुन।'

महावीर जिस ज्ञान और चारित्र की चर्चा कर रहे है, उसका उद्देश्य जीवन की असलियत से पहचान कराना है। अगर मात्र भौतिक सुख-सुविधाएँ पाने के लिए ही हम डिग्रियो का भार ढोते रहे तो, ये डिग्रियाँ अतत हमारे लिए वैसे ही भारभूत होगी, जैसे गधे के लिए चदन का लादा। ज्ञान, न किताब है न कण्ठस्थ। ज्ञान तो जीवन है। जब जीवन मे आत्मसात हो जाये ज्ञान, तो जो कुछ होगा, वह अपने अस्तित्व के लिए होगा।

मैने जो चर्चा की है—दर्शन, ज्ञान और चारित्र की, यह महावीर का मूल मार्ग है। महावीर, इस साधना मार्ग को मोक्ष-मार्ग कहते है और मोक्ष इस मार्ग का मार्ग फल है। दर्शन का सम्बन्ध हृदय से है, ज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और चारित्र का सम्बन्ध हमारे आचार-व्यवहार से। एक बात बहुत साफ कह देना चाहता हूँ कि यदि महावीर के मार्ग से, उनके मार्गफल को प्राप्त करना चाहते हो तो, यात्रा को क्रमश पडाव देने होगे। दर्शन इस यात्रा पथ का, पहला मील का पत्थर है, ज्ञान दूसरा और चारित्र तीसरा। जब तक जीवन मे हृदय-शुद्धि नही, मानसिक पवित्रता नही तब तक आचार-व्यवहार मे लाया गया सयम, हमे चारित्रिकता की प्रतिष्ठा जरूर दिला सकता है, किन्तु आत्मा मे आध्यात्मिक परिणति नही आ पायेगी। जब तक हमारे

भीतर अनर्गलताएँ रहेगी, अशुभ का बसेरा रहेगा तब तक जीवन मे आत्मिक प्रभात की सम्भावना बहुत कम रहेगी। श्री चन्द्रप्रभजी की एक चर्चित कविता है—

तप रहा है, वह तपस्वी,
देख अलि! उस वृक्ष नीचे।
अस्थि पजर हो गया, पर
राग के आलाप खीचे॥
जिदगी उसने लगायी,
जिदगी को साधने मे।
पूछना उससे मिला क्या
यो स्वय को मारने मे?
सूख सकती अस्थियाँ पर
सूख सकता अह किसका।
देह को जर्जर बनाना,
धर्म कैसा देवता का॥
रग डाले वस्त्र गहरे,
पर रगा क्या हृदय तेरा।
देखती हूँ वासना का
आज भी उसमे बसेरा॥
हो कहाँ से फिर सबेरा॥

जब तक हृदय मे वासना है, किंतु व्यवहार मे ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा, भीतर मे राग-द्वेष की ग्रथियाँ है और बाहर मे उपवासो का सिलसिला, तब तक जीवन का बाह्याभयन्तर खुद एक विरोधाभास है। अध्यात्म हस नीति मे विश्वास रखता है। दूध का दूध और पानी का पानी। जिस दूधिये के पास पानी मिला दूध है वह बाजार मे तो बिक सकता है, दूध की प्रतिष्ठा पा सकता है, लेकिन हस के काम नही आ सकता। निर्वाण हमेशा हसो को मिलता है, बगुलो को नही। अपने भीतर के हस को जगाओ, बगुला नीति कारगर नही हो पायेगी। मुखौटे यहाँ

सार्थक नहीं हो सकेगे । ससार-मुक्ति और आत्म-उपलब्धि के लिए पहले, खोले हृदय की दृष्टि । शुद्ध हृदय से जो अन्तरज्ञान मे जीता है उसीका चारित्र सम्यक् है । महावीर कहते है, चारित्र के बिना मोक्ष/निर्वाण नही होता, लेकिन वे यह भी स्पष्ट सकेत दे रहे है कि बिना ज्ञान के चारित्र निष्पन्न नही होता और ज्ञान तब तक अपनी सार्थकता को आत्मसात नही कर पायेगा जब तक जीवन के द्वार पर दर्शन की दस्तक नही होगी । दर्शन, ज्ञान और चारित्र की समवेत साधना का नाम ही मोक्ष मार्ग है ।

□

परमात्मा : स्वभाव सिद्ध अधिकार

"धरती पर प्रकाश तो कई दफे अवतरित हुआ है, फैला है। लेकिन अधेरे मे जीने वाले लोगो ने उसका अनादर ही किया है। कभी प्रकाश को शूली पर लटकाया गया, कभी कानो मे कीले ठोकी गई, कभी जहर का प्याला पीने को मजबूर किया गया और कभी गोली से उडा दिया गया। दु ख मे जीने वाले लोग कभी आनद का स्वागत नही कर पाते।"

सिद्धत्व हमारा स्वभाव सिद्ध अधिकार है। न केवल अधिकार है, स्वभाव भी है। आत्मा न मन है, न वचन है, न काया है , आत्मा सिर्फ 'आत्मा' है। निरालम्ब है, निष्कलुष है, निर्दोष है, मोह-रहित, भयमुक्त, वीतराग है। क्रोध, वैमनस्य, घृणा ये सब आत्मा के व्यक्तित्व नही है। राग और द्वेष ये सब आरोपित है। खौलता हुआ पानी हाथ जला सकता है, लेकिन अग्नि को नही जला सकता। पानी का स्वभाव उष्णता नही, शीतलता है। चाहे जितना खौलता पानी अग्नि मे डाला जाये, वह अग्नि को बुझाने मे ही सहायक होगा, जलाने मे नही। चाहे अग्नि मे खौलता पानी डाला जाये या ठण्डा पानी, दोनो ही अग्नि को शान्त ही करेगे।

यहा जल का स्वभाव शीतलता है, गरमाहट आरोपित है। शीतलता वास्तव मे निर्भयता, वीतरागता, निष्कलुषता की प्रतीक है, जबकि गरमाहट क्रोध, वैमनस्य, सासारिकता आदि की प्रतीक है।

सिद्धत्व का अर्थ भगवत्ता से है, हमारे परमात्म-स्वरूप से है। बहुत से लोग ऐसे हुए, जिन्होने परमात्मा की खोज के लिये सारे ससार मे तलाश की, लेकिन उन्हे हताश होना पडा। जो कभी खोया हो, उसे खोजा जाता है। बगल मे बच्चे को रखकर, नगर भर मे उसे ढूढना बेकार की परेशानी नही तो और क्या है ? जिसे खोया ही नही, उसे खोजोगे कैसे ? यह खोजने की यात्रा तो ठीक वैसे ही हुई, जैसे मृग कस्तूरी को ढूढने के लिये चारो ओर भटकता है, लेकिन अन्तत कस्तूरी वही मिलती है, जहा से उसने खोजना प्रारम्भ किया था। परमात्मा भी आखिर वही मिलेगा जहा हम स्वय है, जहा से हमने यात्रा प्रारम्भ की।

परमात्मा की खोज कम करनी है, केवल याद भर करना है। ऐसा नही है कि हमारे भीतर केवल आत्मा ही हो, परमात्मा भी है। हकीकत मे तो आत्मा ही परमात्मा है। पर जिसे सदा से पाया है उसकी याद नही आया करती। किसी व्यक्ति का महत्त्व तब स्वीकार किया जाता है, जब वह दूर हो जाता है। लोग जीते-जी मा-बाप की सेवा नही

करेगे। मरने के बाद उनकी याद मे ऑसू बहायेगे। जीते-जी माता-पिता को रुलाते है, लेकिन मरने के बाद स्वय रोते है।

कई दफा सोचा करता हूॅ, कि जब परमात्मा इसान के भीतर है तो उसे याद क्यो नही आती। हकीकत मे स्मृति वियोग होने पर आती है। पत्नी को पति के मूल्य का तब तक अहसास नही होता जब तक वह उससे दूर न हट जाये।

पुत्र विदेश मे रहता है। उसकी याद मे मॉ ऑसू बहाती रहती है, लाखो शुभकामनाएॅ करती रहती है। लेकिन मिलन होने पर स्थिति सामान्य हो जाती है। इसलिए जो अहसास सयोग मे है, उससे भी ज्यादा वियोग मे होता है, क्योकि यहा एक दूजे की स्मृति है, याद है।

मछली सागर मे रहती है, वर्षो-वर्षो से रहती है, लेकिन उसकी नजरो मे पानी की कीमत का अहसास नही है। हमारे जीवन के लिए जैसे ऑक्सीजन आवश्यक है, उसी प्रकार मछली के लिए पानी आवश्यक है। अगर ऑक्सीजन समाप्त हो जाये तो इसान का अस्तित्व नही रहेगा। लेकिन मनुष्य को ऑक्सीजन के महत्व का अहसास नही है और मछली को पानी का। क्योकि दोनो ने जन्म से पाया है, इसलिए इसका महत्व नही समझ पाये। हमेशा अमृत पीने से, अमृत भी पानी बन जाता है। मनुष्य अमृत के लिये इसलिये तरस रहा है, क्योकि वह उसके पास नही है और देवताओ के लिए अमृत की कोई कीमत नही है, क्योकि वह तो उन्हे उपलब्ध है।

जिस ताजमहल को देखने के लिए दुनिया भर के लोग आगरा पहुॅचते है, कभी आगरा वासियो को पूछो, बहुत- से लोग ऐसे मिल जायेगे जिन्होने कभी ताजमहल ही न देखा हो। वे कहते है ताजमहल क्या है, मकबरा है। लोग हरिद्वार और वाराणसी मे गगा-स्नान करने जाते है और वहा रहने वाले लोग अपने ही घर मे, बाथरूम मे स्नान करते है। मनुष्य ऑक्सीजन की कीमत तब आक पायेगा जब उसके अभाव मे वह तडफे। मछली पानी की कीमत तब आक पायेगी जब उसे पानी से अलग कर दिया जाये। जैसे जीवन के लिए ऑक्सीजन, मछली के लिये पानी, उसके अस्तित्व से जुडा हुआ है, वैसे ही परमात्मा हमारे अस्तित्व से जुडा है।

परमात्मा का कभी वियोग नही हो सकता। जहा योग होता है, वहा वियोग होता है, जहा वियोग होता है, वहा योग होता है। परमात्मा

का कभी वियोग नहीं हुआ, इसलिये योग भी कैसे होगा । इसलिए परमात्मा को खोजना नहीं है, मात्र बोध का रूपान्तरण करना है । सिर्फ अन्तर की आख खोलकर स्थिति को देखना है, समझना है । यह दर्शन ही, समझ की क्रान्ति होगी ।

देखा और खोजा उसे जाता है, जो बाहर हो । जो बाहर है ही नही, उसे बाहर कैसे ढूढा जाये ? क्या आत्मा,आत्मा को ढूढेगी ? क्या व्यक्ति अपने आप पर शका करेगा ? लोग आत्मा पर शका करते है । हकीकत मे तो जो शका कर रहा है, वही आत्मा है । इससे अधिक हास्यास्पद क्या होगा कि 'आत्मा' अपने आप पर शकास्पद है।

परमात्मा कही बाहर नही, हमारे भीतर है, हम स्वय है, पर बाहर इसलिए ढूढ रहे है, क्योकि इन्द्रिया बाहर खुलती है । आख दूसरे को देखती है, कान दूसरे को सुनते है, नाक दूसरे की गध लेती है, सब कुछ बाहर से जुडा है, लेकिन अपने आप को ही भुला बैठे, तो बाहर क्या करोगे ? आख सब कुछ देख लेती है, लेकिन अपने आप को नही देख पाती, कान सब कुछ सुन लेता है लेकिन अपनी, अन्तर् की आवाज अनसुनी रह जाती है। अगर परमात्मा को खोजना और पाना भी चाहते हो तो भीतर की यात्रा करनी होगी । इसमे आख, कान, नाक, गला सहायक नही होगे । यह यात्रा अतीन्द्रिय होती है । अन्तर् के तत्त्व का दर्शन कर पायेगी, अन्तर की आख । जिसे शिव का तीसरा नेत्र कहा गया है, महावीर ने प्रज्ञा का नेत्र कहा ।

प्रकृति बाहर है, परमात्मा भीतर है । आखिर जो जहा होगा उसे वही तलाशा जायेगा । प्रकृति बाहर है, उसकी तलाश बाहर करो । परमात्मा भीतर है, उसे भीतर ढूढो । ससार बाहर है, उसे बाहर ढूढो। समाधि भीतर है, उसे भीतर देखो । लोग विपरीत चलते है, अन्तर मे ससार को बसाते है, बाहर समाधि और सिद्धत्व खोजते है । जो जहा है उसे वही देखना चाहिये । सुई अगर कमरे मे खोई है, तो वही मिलेगी चाहे वहा अधेरा भी क्यो न हो । कमरे मे खोई हुई सुई, कभी छत पर नही मिलेगी । उल्टी यात्रा करने से क्या फायदा, जाना है बम्बई और बैठ रहे हो 'कालका मेल' मे, गतव्य आखिर कैसे मिल पायेगा।

पर से जुडने के लिये आधार चाहिये । जैसे बिना इन्द्रियो के प्रकृति से सम्बन्ध नही जोडा जा सकता, वैसे ही इन्द्रियातीत हुए बिना परमात्मा से सम्बन्ध नही किया जा सकता । दूसरे से जुडने के लिये आधार

चाहिये, लेकिन अपने आप से जुडने के लिये। वहा किसी आधार की आवश्यकता नही है। कमरे मे बैठे हो, अधेरा है, अगर किसी भी वस्तु को ढूढना हो तो प्रकाश की आवश्यकता होगी, अगर अपने आप को ढूढना हो तो ? अन्धेरे मे भी स्वय का पता रहता है कि मै हूँ।

आख बाहर खुलती है , इसलिये हम उसे भी बाहर ढूढ रहे है, जो बाहर है ही नही। छोटे दु ख को मिटाने की तरकीब बडा दु ख है, जैसे कोई बच्चा फोडे के दर्द से कराह रहा है, इसी बीच चलते हुए गिर जाये, हाथ की हड्डी टूट जाये तो बच्चा फोडे के दर्द को भूल जायेगा और हड्डी का दर्द उस पर प्रभावी हो जायेगा। ठीक ऐसे ही चेतन पर जड प्रभावित है। आत्मा पर पुद्गल प्रभावित है। चले थे परमात्मा को ढूढने, फोडे का इलाज कराने, ससार मे फस गये, परमात्मा को भूल गये, हड्डी टूट गई, फोडे को भूल गये।

इसान बाहर की दौड मे लगा है। कितने लोग ऐसे है जो परमात्मा को या अपने आप को पाना चाहते है। कहने मे भले ही कह देगे कि हम परमात्मा का दर्शन करना चाहते है , लेकिन मायाजाल के सामने परमात्मा भी गौण हो जाता है। एक ओर रुपये मिलते हैं, दूसरी ओर परमात्मा मिलता हो, तो लोग लाख की ओर लपकेगे ,परमात्मा की ओर नही। भले ही जिन्दगी भर कहते रहे, मुझे परमात्मा का दर्शन करना है, लेकिन जब किसी ने कहा, चलो परमात्मा दिखा दूँ तो कहने लगे, ठहरो, लडका बाहर गया है, वह आ जाये, उसे दुकान सभलवा कर चलता हूँ। आसक्ति जड की, लगाव पुदगल का, सम्मोहन ससार का, चेतना का सब कुछ तो जड के लिए न्यौछावर कर बैठे हो।

बाहर की दौड बाहर के उपकरणो से तादात्म्य बनाती है, अन्तर् की दौड अन्तर् से। तलाश कर रहे हो अन्तर् की और दौड रहे हो बाहर। ठीक उल्टी यात्रा। और तो और व्यक्ति अपनी शक्ल भी आइने मे देखकर पहचान पाता है ? अपनी पहचान का भी माध्यम कोई और? दूसरे के द्वारा स्वय को अच्छा कहे जाने पर, स्वय को अच्छा समझ लेते है। स्वय का परिचय भी दूसरो पर आधारित हो गया है।

मैने सुना है, पोपट राम अपने दो दोस्तो के साथ तीर्थयात्रा पर निकला। नाम की तीर्थयात्रा थी, निकला तो घूमने-फिरने ही था। एक दिन चलते-चलते जब कोई गॉव न आया, साझ ढल गई तो जगल मे ही रात्रि विश्राम करना पडा। तीनो ने निर्णय किया कि प्रत्येक तीन-तीन

घटे पहरा देगा, दो सोयेगे, एक जगेगा। पोपट राम के मित्रो मे एक नाई था, दूसरा गजा। सबसे पहले नाई पहरा देने के लिये खडा हुआ, शेष दोनो सो गये। नाई अकेला खडा-खडा तग आ गया और कुछ न सूझा। वह पोपट राम के पास गया और उसका सिर मुडन करने लगा।

जब तीन घण्टे बीत गये, नाई ने पारी बदलने के लिये पोपट राम को उठाया। उसने सिर पर हाथ फेरा, बोलने लगा, मूर्ख तू ये क्या कर रहा है तुमने मेरी जगह उस गजे को उठा दिया है।

लोग अपनी पहचान भी बाहर से कर रहे है, औरो से कर रहे है और इस बाहर की खोज मे परमात्मा को भी बाहर ही खोजने लगे है। अमृत भीतर है, खोज बाहर चल रही है। भीतर की तो स्मृति भी नही है। दशो दिशाओ की तो सभी चर्चा किया करते है, लेकिन ग्यारहवी की चर्चा कोई नही करता। मेरा इशारा इसी दिशा की ओर है। इसे अपनी दिशा कहे। कोई कहता है परमात्मा उत्तर मे है, कोई कहता है दक्षिण मे है, कोई कहता है पूर्व या पश्चिम मे है, हकीकत मे तो परमात्मा वहाँ है, जहॉ सभी दिशाऍ गौण हो जाती है, वह है अन्तर्-दिशा। जो जिस दिशा मे है उसकी खोज उधर ही होनी चाहिए। गगा का मूल उत्स खोजने के लिए, अगर व्यक्ति दक्षिण की ओर अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है तो उसकी खोज पूरी न होगी। गगा का उत्स उत्तर मे है, गगोत्री मे है। अगर अपनी जीवन-धार का उत्स खोजना चाहते हो, तो वह तुम्हारे भीतर है, हमारी गगोत्री हमारे भीतर है, जहॉ से बही है जीवन की धारा। माता-पिता से हमे जन्म मिला है, जीवन नही। चाहे सौ नाले गगा मे आकर मिल जाये, लेकिन वे गगा के आदि स्रोत नही हो सकते। गगा का आदि स्रोत तो गोमुख ही कहलायेगा।

आज हम पूरे शरीर मे है। इससे पहले छोटे शरीर मे थे। उससे पहले और भी छोटे शरीर मे थे। जब मॉ के पेट मे थे तब और भी छोटे थे। कभी ऐसा भी था जब मॉ के पेट मे मात्र अणु थे। अणु से पूर्व के इतिहास को जानना चाहोगे ? अणु से पूर्व भी हमारा अस्तित्व था। हम एक अदृश्य आत्मा थे। ये जितना, जो कुछ दिखाई दे रहा है यह अणु और परमाणु की विराटता है। कल्पना की जा सकती है बिना बीज के क्या वृक्ष का अस्तित्व हो पायेगा ? अगर अपने जीवन के अतीत की ओर झाकोगे, तो स्वय को छोटे से छोटा, अन्त मे अदृश्य

पाओगे और मूल स्रोत तो आखिर हम ही है और जिस दिन यह अणु और अदृश्य उड जायेगा, उस दिन वह मब कुछ, जो आज देख रहे हो एक पिंजरा भर होगा, खाली पिंजरा जिसे मुर्दा कहकर फूक दिया जायेगा, दफना दिया जायेगा।

लोग आत्मा की पहचान नही कर पाते और सारी जिन्दगी ससार के लिए खो देते है और जैसे खुद है वैस ही अपना परमात्मा बना लेते है। जो शाकाहारी है, उसने अपना ईश्वर शाकाहारी बना लिया और जो मासाहारी है, उमने अपना ईश्वर मासाहारी बना लिया। परमात्मा पर भी अपनी आकृति का आरोपण कर दिया। अगर ससार भर की जितनी मूर्तियॉ है, जितने ईश्वर के भेद-विभेद है उनका निर्माण कार्य पशु-पक्षियो के हाथ मे सौप दिया जाता है तो जितने भगवान के चेहरे होते है सब पशु-पक्षियो मे मिलते जुलते होते। पता नही ईश्वर ने इसान को बनाया या नही, लेकिन इसान ने तो अपना ईश्वर बना ही लिया। अपने ईश्वर को बाहर निर्मित न करे, अपने बनाये हुए परमात्मा की प्रार्थना न करे, क्योकि वहॉ सारी-की-सारी प्रार्थनाये ससार की होगी, अगर करनी है प्रार्थना तो उसकी करो, जिसने तुम्हे बनाया है। अन्यथा, ध्यान मे भी बैठोगे तो वहॉ ध्यान मे भी परमात्मा नही पति आयेगा, अगर माला गिनने बैठोगे तो भगवान नही भोग आएगे।

मै आबू मे था। ध्यान साधना के लिए वहॉ तीन माह की स्थिरता थी, काफी विदेशी लोग भी ध्यान का अभ्यास करने आते थे। एक दिन, इटली का एक जोडा हमारे पास बैठा था। दोनो ने कहा, हम इटली मे भी रोज आधा घटा ध्यान करते थे। हम दोनो की सर्विस अलग-अलग स्थानो पर है तथा २०० कि मी की दूरी पर है।

मैने कहा, सो तो ठीक है, पर जरा यह बताये कि आप दोनो आधे घटे तक ध्यान मे क्या करते है ? पत्नी ने अपने पति की ओर इशारा करते हुए कहा, ये मुझे याद करते है और मै इन्हे याद करती हूँ।

इस घटना पर हॅसी भी आ सकती है, लेकिन यह एक की नही, सबके जीवन की आपबीती है। अब तक हमारी ओर से किया जाने वाला ध्यान योग, ऐसे ही हुआ है। दिखने मे लगता है, व्यक्ति परमात्मा का चिन्तन कर रहा है, पर वहॉ परमात्म-चिन्तन के नाम पर पति-पत्नी का चिन्तन चलता है।

परमात्म तत्त्व की खोज आवश्यक है, पर यह खोज बाहर की खोज

नही, अपितु भीतर की खोज हो। परमात्म खोज के नाम पर अब तक जितनी यात्राएँ की गयी, वे सब बाहर की यात्राएँ थी और परमात्मा तो अन्तर्-जगत मे है। या यू कहे जो ढूँढ रहा है, वही परमात्मा है। परमात्मा द्वारा परमात्मा की खोज की जा रही है। मैने कहा, परमात्मा द्वारा परमात्मा की खोज, यानि अपने आपकी खोज। इसे खोज भी न कहे, यह तो आत्म-बोध है, आत्म-दर्शन है। कुन्द-कुन्द ने तो ऐसे लोगो के हाथ से निर्वाण का अधिकार ही छीन लिया, जो आत्मबोध और आत्मदर्शन से शून्य है। इसलिए मोक्ष पाहुड मे न परमात्मा की शरण स्वीकार की गयी है, न किसी देवी-देवता की। वहाँ कुन्द-कुन्द कहते है, 'अप्पाहू मे शरण' आत्मा ही मेरा शरण है। इस दुनिया मे कोई किसी का शरण भूत नही है। कोई किसी का नाथ नही है, व्यक्ति स्वय ही अपना नाथ बनता है।

श्रमण अनाथी, नगर के बाहर उपवन मे थे। युवा अवस्था, भरपूर चैतन्य-शक्ति और ऊर्जा का आध्यात्मिक प्रयोग, वर्षो की साधना को घन्टो मे पूर्ण कर रहे थे।

एक दिन उपवन मे सम्राट् श्रेणिक पहुँचा। मुनि के दमकते चेहरे और उभरते यौवन से श्रेणिक विस्मय-विमुग्ध हो गया। सोचने लगा, यह यौवन, यह सौन्दर्य भोग के लिए है या योग के लिए। सन्यासी होने का अर्थ यह तो नही है कि जीवन के साथ ही अन्याय किया जाए। श्रेणिक मुनि के पास पहुँचा, पूछा 'इस तरह युवावस्था मे गृह-त्याग कर सन्यास अपनाने की सार्थकता क्या है ? मुनि ! यह यौवन जो वासनाओ के भार से दबा रहना चाहिए तुम उसे क्षीण कर रहे हो।'

मुनि ने कहा, 'नही ! मै ऊर्जा का सदुपयोग कर रहा हूँ। वह व्यक्ति भला साधना की पराकाष्ठा को कैसे छू पायेगा, जो यौवन ससार को सौपता है और बुढापा परमात्मा को। राजन् ! जितनी ऊर्जा भोग के लिए चाहिए, उससे सौ गुनी ऊर्जा योग के लिए आवश्यक है।'

सम्राट् सकपका गया। पुछने लगा 'मुनिवर ! क्या मै आपका नाम जान सकता हूँ।'

मुनि के कहा 'अनाथी।'

'अनाथी ! बडा विचित्र नाम है। मुनिवर ! अगर इस दुनिया मे आपका कोई नाथ न हो तो मै होने को तैयार हूँ। आप मेरे साथ महलो

मे चले, मै आपको वे सारी सुविधाएँ दूँगा , जिनकी आपको आवश्यकता होगी ।'

अनाथी मुस्कुराये और बोले, 'राजन् ! जो स्वय अपना नाथ नही है, वह भला औरो का नाथ कैसे हो पायेगा । जिन लोगो के बीच तुम घिरे हो, जिनसे तुम्हारी लालसा और वितृष्णा है और जिनसे तुम सम्मोहित हो, वे सब तब तक तुम्हारा साथ निभाने वाले है, जब तक तुम्हारे पास सत्ता और सम्पत्ति है । आज तुम सबके नाथ कहलाते हो। याद रखो जब पिंजरे से पछी उड जायेगा, तब न तुम किसी के नाथ रहोगे न तुम्हारा कोई नाथ रहेगा । तुम अनाथ रहोगे, निपट अकेले ।

आज के सूत्र मे हम महावीर के आत्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन पर ही चर्चा करेगे । महावीर का दर्शन, आत्म-दर्शन है । उनके सारे सूत्र आत्म-अनुभूति के लिए है । वे बहिरात्मपन से छुटकारा दिलाना चाहते है, अन्तरात्मा मे आरोहण करना चाहते है और परमात्म ध्यान करवाना चाहते है ।

भारतीय सस्कृति मे ईश्वर खोज की के मुख्यत दो ही मार्ग रहे है—भक्ति और ध्यान । भक्ति मे ईश्वर की खोज बाहर की जाती है और ध्यान मे भीतर । भक्ति गॉव-गॉव जायेगी, तीरथ-तीरथ जायेगी और पत्थर मे भी परमात्मा को ढूढने की कोशिश करेगी । उसकी प्यास तब तक नही बुझ पायेगी, जब तक पत्थर की मूरत मे परमात्मा की सूरत न दिखा दे जाये—

मन्दिर-मन्दिर मूरत तेरी,
फिर भी न दीखे सूरत तेरी,
युग बीते, न आई मिलन की
पूरणमासी रे ।
दर्शन दो घनश्याम,
नाथ मोरी अखियॉ प्यासी रे ।

भक्ति मे प्यास रहती है, एक सघन प्यास और ध्यान, भक्ति-मार्ग की चरम अवस्था का ही परिणाम है । मन्दिर-मन्दिर मे खोजते हुए, मन मन्दिर की ज्योति का दर्शन हो जाता है । ध्यान का मार्ग अन्तर्जगत का मार्ग है । परमात्मा को भी अपने आप मे ढूढने का मार्ग है । आत्मा

को परमात्मा से कभी अलग नही किया जा सकता । दोनो एक साथ है। भला कपूर से खुशबू को कभी अलग निकालकर दिखालाया जा सकता है । जैसे तेल मे तिल, दूध मे मक्खन, घुले-मिले रहते है वैसे ही शरीर मे आत्मा और परमात्मा रहते है । इसलिए महावीर ने परमात्मा के ध्यान की प्रेरणा कम दी, आत्म-ध्यान पर विशेष बल दिया। 'जो झायही अप्पाणम् परम समाहि हवे तस्स' जो आत्मा का ध्यान रखता है, क्योंकि आत्मा पर से मुक्त है । जहाँ स्व मे वास होता है वहाँ समाधि होती है । आत्मा न शरीर है, न मन है, न वाणी है । जड पुद्गलो से भिन्न जो पदार्थ है, वह आत्मा है । इसलिए महावीर आज के सूत्र मे उस तत्त्व को उजागर कर रहे है, जिसकी खोज मे अब तक पता नही, कितने-कितने वेद, पुराण और आगम रचे गये है। महावीर का बहुत छोटा-सा सूत्र है यह सूत्र उन खोजियो के लिए है, जो आत्मा बनाम परमात्मा की खोज मे लगे है । महावीर कहते है—

वह आत्मा परमात्मा बन जाती है, जब वह कर्मो से छुटकारा पा जाती है ।

साधको के लिए यह बडा बहुमूल्य सूत्र है । महावीर इस सूत्र के माध्यम से यह सन्देश दे रहे है कि परमात्मा तुम स्वय हो । आवश्यकता, मात्र आवरण को हटाने की है । आगे पर्दा लगा रहे पीछे नाटक चलता रहे । पर्दे के पीछे होने वाले नाटक की पदध्वनि सुनाई दे सकती है, सवाद सुनाई दे सकते है, लेकिन दर्शन नही हो सकता । जैसे नाटक को देखने के लिए पर्दा हटाना आवश्यक है । वैसे ही आत्म-दर्शन, परमात्म-दर्शन के लिए कर्म आवरण को हटाना आवश्यक है ।

मोको कहाँ ढूँढे बन्दे, मै तो तेरे पास मे ।
ना मै बकरी, ना मै भेडी, ना मै छुरी गडास मे ।
नही खाल मे, नही पोछ मे, न हड्डी न मास मे ।
न मै देवता, न मै मस्जिद, न काबा, कैलाश मे ।
ना तो कोनो क्रिया कर्म मे, नही जोग-बेराग मे ।
खोजी होय तो तुरत मे मिलियो पलभर की तलाश मे ।
मै तो रहो शहर के बाहर, मेरी पुरी मवास मे ।
कहे 'कबीर' सुनो भई साधो, सब सासो की सास मे ।

कबीर का यह पद महावीर के सूत्र का ही विस्तार है, महावीर कहते है, 'अप्पा सो परमप्पा' और कबीर कहते है, 'सब सासन की सास मे।' परमात्मा को खोजने के अब तक कितने उपाय किये गये। जितने धर्म, दर्शन और सम्प्रदाय चले, सबके सब परमात्म-दर्शन के नाम पर चले। कबीर कहते है, मै तो तेरे पास मे। महावीर के भावो को कबीर ने अपने शब्दो मे अभिव्यक्त किया है और उन लोगो को सन्देश दिया है, जो बकरे और भेड की बलि देकर परमात्मा को पाना चाहते है। धूप-दीप जलाये, भेड-बकरियो की बलि देकर धरती को लहूलुहान किया, लेकिन परमात्म दर्शन तो दूर उसकी अनुभूति तक नही हो पायी। आदमी पाना चाहता है खुद और बलिदान देना चाहता है दूसरो का। अपनी उपलब्धि के लिए दूसरो की कुर्बानी ? यह सब कुछ धर्म के नाम पर मानवता का गला घोटना नही तो और क्या है ? देवी-देवताओ को खुश करने के नाम पर आदमी स्वय को बचाता है, दूसरो को चढाता है। आज भी आदमी मे आदमीयत नही आयी। आदम युग की तरह हिंसक प्रवृत्तियो के माध्यम से व्यक्ति देवी-देवताओ को खुश करना चाहता है, परमात्मा को पाना चाहता है। कबीर कहते है, 'ना मै बकरी, ना मै भेडी, ना मै छुरी गडास मे।'

कहॉ खोज रहे हो परमात्मा को। क्या बकरी मे परमात्मा को ढूँढ रहे हो ? भेडो का गला काट कर परमात्मा का दर्शन करना चाह रहे हो ? अपनी उपलब्धि के लिए अपना बलिदान आवश्यक है। बकरी को काटने से शायद बकरी पाले, लेकिन हम नही पा सकेगे। व्यक्ति छुरी को रगड रहा है, धार तेज करने के लिए। लेकिन छुरी की धार मे परमात्म-दर्शन नही होगा।

'नही खाल मे, नही पूँछ मे न हड्डी न मास मे।' कबीर ने बडी गहरी बात कही है। वे फकीर भी है, सत भी है, मौलाना भी है, पण्डित भी है। कबीर बात पत्ते की उठा रहे है। परमात्मा न खाल मे है, न हड्डी मे है, न मास मे है। आखिर लोग इनकी बलि क्यो दिये जा रहे है ? परमात्मा न मदिर मे है, न मस्जिद मे है, न काबा मे है, न कैलाश मे, वह तो अपने आप मे है। अगर मदिर या मस्जिद मे भी ईश्वर अल्लाह को ढूँढा तो वहा भी परमात्म-तत्त्व को अपने आप मे ढूढना पडेगा। जैसे गाय के चित्र को देख कर गाय का बोध हो सकता

कर्म से विमुक्त है, वही परमात्मा है । 'मै तो बसो शहर के बाहर, मेरी पुरी मवास मे ।' शहर यानि ससार, परमात्मा शहर– ससार मे नही है । शहर के बाहर है, ससार से परे है । 'पूरी मवास मे ।' परमात्मा का निवास स्थान मवास मे है, अतर के दुर्गम गढ मे है । इसलिये वह व्यक्ति परमात्मा को नही पा सकेगा जो विश्व विजेता है, जिसने सैकडो किलो पर फतह का झण्डा गाडा है, वह अतत पराजित हो जाता है, अपने आपने । सैकडो दुर्गम किलो पर विजय प्राप्त करने वाला अपने गढ के सामने आत्म-समर्पण कर देता है ।

सिकदर जब मृत्यु शैय्या पर सोया हुआ था उसने अपने सभासदो को आदेश दिया, 'जब मै मर जाऊँ तो मेरी कब्र पर मेरा परिचय यह खुदवा देना कि, वह सिकदर, जो सारे ससार को जीत कर अन्त मे अपने आपसे हार गया ।' दूसरो को जीतने मे सच्ची विजय नही है, सच्ची विजय तो अपने आपको जीतने मे है । वह जीत भी क्या हुई, जिसमे व्यक्ति अपने आप से हार गया । दूसरो को जीतने मे तो मानवता लहूलुहान हो जायेगी और अपने आप को जीतने से तो अस्तित्व पर अमृत की वर्षा होगी । जब अभीप्सा की आग जलेगी, तब अमृत की वर्षा होगी । इसलिए कबीर ने कहा 'मेरी पुरी मवास मे ।' अपने अतर मे है परमात्मा का निवास स्थान । 'सब सासो की सास मे हर सास, परमात्मा की सास है । काश ! ससार इसे स्वीकार कर पाये ।

महावीर परमात्म तत्त्व को उजागर करने का सूत्र दे रहे है । 'अप्पो वीय परमप्पो' आत्मा ही परमात्मा बन जाता है । श्रमण सस्कृति को छोडकर सभी धर्म-दर्शन अपने आपको परमात्मा मे खो देने की प्रेरणा देते है । लेकिन महावीर स्वय परमात्मा होने का पाठ पढाते है । इसलिये जब राम और कृष्ण धरती पर अवतरण लेते है तब उसे अवतरण कहा जाता है । वे ईश्वर से इसान बनते है । जबकि महावीर का दर्शन इसान से ईश्वर की यात्रा है । वहाँ ईश्वर इसान बनकर अपनी ऐश्वर्य शक्ति नही दिखाता, अपितु इसान अपने भुजाओ के बल पर यात्रा करता है— गगासागर से गगोत्री की ओर, तलहटी से शिखर की ओर । यह सत्य की खोज है, शिखर की यात्रा है और उद्‌गम तक पहुँचना है । इस यात्रा मे वे ही लोग सफल हो पायेगे जो महावीर और बुद्ध की तरह कृत सकल्प होंगे तेनसिह और हिलेरी की तरह अपनी भुजाओ पर विश्वस्त होगे ।

इसलिए जिन-दर्शन मे अवतरण नही होता, ऊर्ध्वारोहण होता है। गगासागर से गगोत्री की ओर यात्रा होती है। गगोत्री से गगासागर की यात्रा तो मुर्दा भी कर सकता है। शिखर से तलहटी तक पत्थर भी लुढक सकता है। लेकिन गगासागर से गगोत्री की यात्रा वे ही लोग कर पाएगे जो चेतना के धनी है। तलहटी से शिखर तक वे ही लोग पहुँच पाऐगे जिनकी चैतन्य शक्ति उजागर है। इसलिये महावीर इसान को ईश्वर बना रहे है, आत्मा को परमात्मा बना रहे है, नर को नारायण और भक्त को भगवान बना रहे है।

परमात्मा की खोज तो आवश्यक है। मै यह भी नही कहता कि पढी-सुनी बातो से प्रभावित होकर खोज शुरू कर दो, क्योकि अगर स्वय की प्यास नही होगी तो उस खोज मे भी दृढ सकल्प नही रह पाओगे। परमात्मा की खोज भी प्यास से हो, बुद्धि के निर्णय से नही। अगर बिना प्यास के पानी भी उपलब्ध हो गया तो क्या करोगे पानी का। वह पानी भी बेकार रहेगा। पानी की सही कीमत तभी आकी जा सकेगी जब सघन प्यास हो। कीमत पानी की नही, पानी के प्रति प्यास की है। अगर दुनिया मे प्यास है तो निश्चित रूप से पानी भी होगा। अगर पानी न होता तो प्यास न होती और अगर परमात्मा न होता तो प्रार्थनाए भी नही होती। जिसे जिस चीज की आवश्यकता ही न हो उसे वह चीज सौपना, उसे गड्ढे मे डालना नही तो और क्या है ? परमात्म-दर्शन और परमात्म-अनुभूति के लिये पहले प्यास जगाओ, फिर खोज प्रारभ करो। दूसरा प्यास का बोध करा सकता है, लेकिन प्यासा नही बना सकता है। प्यास तो है स्त्रियो की और पहुँच गये मदिर मे। अगर ऐसा है तो वहाँ परमात्मा दिखाई न देगा केवल स्त्रिया ही दिखाई देगी। परमात्मा के ध्यान मे तो बैठ जाओगे, लेकिन मन अप्सराओ की ओर दौडेगा। पता है अनेक लोग मदिर क्यो जाते है ? वे इसलिए जाते है कि मुकदमा न हार जाये। कोई इसलिये मदिर जाता है कि उसे पत्नी मिल जाये, कोई पति की चाह मे जा रही है तो कोई पत्नी की चाह मे जा रहा है। परमात्मा की चाह तो खो गयी। एक व्यक्ति कहता था, 'आपके पास आने से मेरी दुकान अच्छी चलने लगी है।' वह रोज आता है मेरे पास, २-३ घटे तक बैठा रहता है। इस विश्वास के सहारे वह अपनी दुकान तो चला लेगा, पर मुझसे कुछ हासिल न कर पायेगा।

मैने सुना है, अमेरिका मे एक प्रसिद्ध अभिनेत्री किसी चर्च मे गयी।

पूर्व सूचना थी, इसलिये सारा चर्च खचाखच भरा था। अभिनेत्री ने पादरी से कहा, लोग कितने धार्मिक हो रहे है। इतने लोग चर्च मे आये है। शायद ससार मे यही ऐसा चर्च होगा जहॉ इतने लोग आते है।

पादरी ने कहा, जी! क्षमा करे, यह भीड चर्च के लिये नही, आपके लिये आयी है। किसी दिन आप बिना शोर शराबे के यहॉ आये, देखे, मेरे सिवा कोई न मिलेगा।

यहॉ चिन्ता इस बात की नही है, कि परमात्मा मदिर मे, मिलता है या चर्च मे मिलता है। परमात्मा तो हर जगह मे मिलता है। पर व्यक्ति परमात्मा को ढूढने के लिये तो जाये। अगर जीवन को गौर से देखा जाये तो प्यास अपने आप उठेगी।

व्यक्ति बाहर की खोज व्यर्थ साबित होने पर भीतर की खोज प्रारभ करता है। लेकिन तब भीतर की खोज नाकामयाब हो जाती है, जब ऊर्जा समाप्त हो जाती है। परमात्मा की खोज तब प्रारभ करनी चाहिये, जब व्यक्ति शक्ति-पुज हो। शक्ति क्षीण होने पर न सघर्ष करने की शक्ति रहेगी, न उत्साह रहेगा।

व्यक्ति धर्म की खोज तब प्रारभ करता है, जब धन खोजते-खोजते हार जाता है और धर्म को ढूढता भी है, तो भी बाहर। खोयी भीतर, खोज बाहर, वह सुई भला कैसे हाथ लगेगी ?

धन से खुशामदी खरीदी जाती है, लेकिन यश नही। पद पाया जा सकता है, लेकिन प्रतिष्ठा नही। जब तक सत्ता हाथ रहती है, तब तक लोग पीछे लट्टू बने रहते है। लेकिन सत्ता खोते ही पूछ समाप्त हो जाती है। गोर्बाच्योव, जिनका सपूर्ण सोवियत सघ मे वर्चस्व था, सत्ता हाथ से गयी और आज स्थिति यह आ गयी है। जो ससार की शक्ति माना जाता था, तथा जिसकी शक्तियो का सचालन सपूर्ण सोवियत सघ से होता था, आज उनका अति-सामान्यीकरण हो गया है, जैसे अस्तित्व ही नही है।

सन् १९१७ मे रूस मे क्रान्ति हुई। लेनिन ने तख्ता पलटकर सत्ता हथियायी। उस समय रूस के प्रधानमत्री करेन्सकी थे, तख्ता पलटने से वे रूस से पलायन कर गये। लोगो ने समझा कही आत्महत्या कर ली होगी। सन् १९६० मे लोगो ने तब दातो तले अगुली दबाई, जब

करेन्सकी न्यूयार्क मे एक दुर्घटना मे मारे गये । पता चला कि वे इतने वर्षो से खिलौने की एक दुकान चला रहे थे । जिसने जीवन मे कभी रूस की सत्ता सभाली थी, उसे खिलौने की दुकान चलानी पडी ।

प्रतिष्ठा तब तक साथ निभाती है जब तक सत्ता हो । इसलिये सत्ता और सम्पत्ति की प्रतिष्ठा को कभी स्थायी न समझ लेना । जो कभी देश का प्रधानमत्री और राष्ट्रपति बनता है, वह उसी देश मे फासी के फदे पर, भुट्टो की तरह लटक जाता है । पता नही, इतिहास मे अब तक कितने राजाओ को अपने बेटो के हाथो मे मरना पडा । कइयो को खुदकुशी करनी पडी । यह सत्ता और सपत्ति का नशा तभी तक सवार रहता है, जब उसकी सुरा पास मे हो । सत्ता हाथ से छिटकी और तिजोरिया खाली हुई । एक करोडपति कब रोडपति बन जाये भरोसा नही, राजा रक और रक राजा बन जाता है ।

मनुष्य ने धर्म की भी अपनी दुकानदारी चला रखी है । थोडा समय धर्म होता है, फिर वही दुकानदारी । धर्म हो सास की तरह, जैसे सास हर पल गतिमान रहती है, वैसे ही धर्म प्रतिपल जीवन मे साथ रहना चाहिये । लोग मदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे जा कर परमात्मा को याद करते है । लेकिन बाहर आकर परमात्मा को भी भूल जाते है और उसके सिद्धातो को भी भूल जाते है, जब पैसा आखो के सामने नाचने लगता है । व्यक्ति धर्म करके अकडता है, जबकि धर्म तो विनम्रता सिखाता है । अगर यह अकड गिर जाये तो परमात्मा स्वत दिखाई देगा। परमात्मा विनम्रता की भाषा जानता है, अहकार की नही । राम का अस्तित्व विनम्रता मे है, रावण का अस्तित्व अहकार मे है । खुदी मिटी कि खुद प्रगट हुआ। परमात्मा को पाने के लिये केवल ममत्व– मेरे पन का त्याग करना आवश्यक नही है । मै का त्याग भी आवश्यक है ।

'तू बदा नही, सचमुच खुद मे खुदा है,
बस हुआ एक नुक्ते से जुदा है ।
वह नुक्ता तू खुद ही है मुजीद ।
मिटा दे खुदी को, तू खुद ही खुदा है ।'

खुदी मिटी कि खुदा प्रगट हुआ । व्यक्ति स्वय को बचाकर विकल्प को ढूढता है । फूल घर मे नही उगाता, खरीद कर परमात्मा के चरणो

नही है, सच्चिदानद है । परमात्मा से दु ख ज्यादा दूर है और सुख ज्यादा निकट है । सुख के बाद आनद का क्रम आता है । जिन्होने सुख मे खोजा परमात्मा को, उन्होने पा लिया । यह तो आनद मे आनद को ढूँढना है । परमात्मा के द्वार पर भिखारी बनकर मत जाओ, मरघटी सूरत लेकर मत जाओ, गीत गाते जाओ, गुनगुनाते जाओ, नाचते-झूमते, उत्सव मनाते हुए, मीरा की तरह । जब ऐसे जाओगे, परमात्मा के द्वार पर रस झरेगा, बिन बाजे की झकार बजेगी, बस एक बार समझ के साथ ध्यान मे उतरना, डूबना, रमना, नाचना, झूमना —

'रस गगन गुफा मे अजर झरे

बिन बाजा झकार उठे,

जहा समुझि परौ जब ध्यान धरै ।'

परमात्मा को पाना है, सत्य को उपलब्ध करना है, यह काटा नही फूल है । काटे की गडन तो हर कोई समझ सकता है, लेकिन फूल की गडन तो सवेदनशील ही जानते है । काटे का तो शराबी को भी पता चल जायेगा, लेकिन फूल की सवेदना जागरूक ही कर पायेगा । यह तो सब कुछ न्योछावर करने का द्वार है । जो डूबेगा वही तो तिर पायेगा। भिखारी खाली हाथ लौट जायेगे और सम्राट् झोली भर लेगे ।

दुखी बिना मागे प्रार्थना कैसे करेगा । हर प्रार्थना मे दु ख को दूर करने के भाव छिपे रहेगे । आदमी दु ख मे सिकुडता है, सुख मे फैलता है । दु ख मे बोलना भी नही चाहता, दु ख मे तो आत्मघात करेगा, कब्र मे सोना चाहेगा, ताकि उससे कोई बोले नही । परमात्मा फैलाव है और आनद फैलाता है । आनद सुख से आगे की स्थिति है । सुख और दु ख तो दुनियादारी है । आत्मा का स्वभाव तो सुख-दु ख से मुक्ति है, सच्चिदानद है । दु ख अधेरा है, आनद प्रकाश है । रोशनी आ सकती है अधेरे मे, अधेरा रोशनी मे नही जा सकता । अगर प्रकाश अधेरे मे आ भी गया तो भी लोग आख बद कर लेगे । प्रकाश का स्वागत नही कर सकेगे । धरती पर प्रकाश तो कई दफे अवतरित हुआ है, फैला है । लेकिन अधेरे मे जीने वाले लोगो ने उसका अनादर ही किया है । कभी प्रकाश को शूली पर लटकाया गया, कभी कानो मे कीले ठोकी गईं, कभी जहर का प्याला पीने को मजबूर किया गया और कभी गोली से उडा दिया गया । दु ख मे जीने वाले लोग आनद का स्वागत नही कर पाते ।

सुख मिट्टी का दिया है और आनद महासूर्य है। जब सूर्य उगेगा, तब भला दिये कि क्या कीमत। सुख-दु ख और आनद को यूँ समझे, आनद चाद है, सुख मन की झील पर प्रतिबिम्ब है और प्रतिबिम्ब का खोना दु ख है।

सुख मे प्रार्थना की जरूरत नही लगती है और दु ख मे प्रार्थना करना तूफान मे नौका चलाना है। सुख मे प्रार्थना, शात सागर मे विहार है। दु ख मे भगवान नही, दु ख याद आता है। भला जिसके सिर मे दर्द है, वह ध्यान मे सिर के दर्द को ही याद कर पाएगा। बीमार को बीमारी याद आती है। प्रार्थना हो फेहरिस्त, जिसमे इधर-उधर की अफरा-तफरी न होगी।

इसीलिए मै कहता हूँ ,परमात्मा आनद स्वरूप है। आत्मा ही परमात्मा है। परमात्मा को इसी पल हासिल कर सकते हो। शेष किसी चीज को पाना हो तो दूसरे की आवश्यकता होगी। लेकिन समाधि को पाना हो, परमात्मा को पाना हो तो हमारे स्वय के हाथ मे है। परमात्मा को तो हर कोई हासिल करना चाहता है, लेकिन यह तो कुनकुना पानी है। कुनकुना पानी कभी वाष्प नही बना करता। जब तक १०० डिग्री तक पानी नही खौलेगा तब तक वाष्प नही बन पायेगा। यहा तो रत्ती-रत्ती समर्पित करनी होगी। परमात्मा के लिये, अपने आप के लिये।

मैने सुना है, कोई फकीर किसी सम्राट् से अकड गया। कहने लगा, परमात्मा हर किसी की रक्षा करता है। सर्दी का मौसम था, सम्राट् ने फकीर को बाधकर नदी मे खडा कर दिया। कहने लगा, 'देखे, परमात्मा कैसे तुम्हारी रक्षा करता है।' दूसरे दिन फकीर वैसा का वैसा नदी से निकल आया। सम्राट ने सैनिको से पूछा, 'यह फकीर ऐसे कैसे ठड मे खडा रहा।' सैनिको ने कहा, 'आपके महल पर जो दिया जल रहा था, उसी के सहारे खडा रहा।' सम्राट् ने कहा, 'फकीर ने धोखा दिया है। ठड से इसकी रक्षा मेरे महल के दीपक ने की है, परमात्मा ने नही की।'

फकीर चला गया। एक दिन फकीर ने दावत दी, सम्राट् को आमत्रित किया गया। साझ पड गयी पर भोजन न मिला। सम्राट् बैठा-बैठा बेचैन हो गया। उसने पूछा,'भोजन मे कितनी देर है।' फकीर ने कहा, 'अभी पक रहा है।' 'कोई दो घटे बीत गये। हर बार फकीर ने यही उत्तर दिया कि 'भोजन पक रहा है।' सम्राट् को

शका हुई। वह भीतर गया, देखा चुल्हे पर पतीले मे चावल रखे थे, पर आग नही जल रही थी। सम्राट् ने पूछा, 'फकीर यह क्या ? 'फकीर ने कहा, 'वही आपके महल का दिया। हम उसी से इसे तपा रहे है, जिससे उस रात हम बचे थे।'

एक अगारे से कुछ न होगा। अरविन्द कहा करते थे कि साधना के मार्ग मे अभिप्सा चाहिए। जो सब कुछ दाव पर लगा सकता है, वही कुछ पा सकता है। जब सभी चाहे, किसी एक चाह मे गिर जाती है, जैसे नदिया सागर मे, तत्क्षण परमात्मा मिल जायेगा, समाधि सध जायेगी।

'बूद' को 'समुद' होने के लिए समुन्दर मे समाना होना। बूद मिटे तो ही सागर है। अहकार मिटे तो ही सर्वकार प्रकट होगा। 'मै' मिटे तो ही 'वह' जन्मेगा। 'मै' 'पर' की दूरी मिटे, स्वय मे परमात्मा की आभा प्रगटे, यही प्रयास होने चाहिए। भगवान ऐसा ही करे।

□

मन : चंचलता और स्थिरता

"ध्यान व्यभिचारी का भी होता है। और सही मे इतना गहरा ध्यान होता है कि अगर उतनी गहराई से परमात्मा के प्रति जुड जाए, तो जीवन का काया-कल्प हो सकता है। व्यभिचारी ध्यान मे जीता है, लेकिन यह अशुभ है। ध्यान का मतलब सिर्फ मानसिक एकाग्रता नही है। उन गलियारो से भी है जिससे होकर ध्यान मे पहुँचा जाता है।"

मन चचल है, इस बात से हम सभी परिचित है, अगर हम अपरिचित है तो इस बात से कि मन की चचलता को कैसे शात किया जाए। मन का शात होना जीवन मे अध्यात्म का प्रवर्तन है और मन का अशात होना ही मनुष्य का सासारिक भटकाव है। मन की चचलता को समझने, और उसे शात करने के लिए, ध्यान एक जीवन्त महामार्ग है। शात और एकाग्र मन ही, आत्म-अनुभूनि और परमात्म-अनुभूति मे मददगार होता है, इसलिए ध्यान मन की शाति के लिए है, आत्मा की अनुभूति के लिए है, परमात्मा मे डूबने के लिए है।

महावीर शात मन के धनी है। मन को शात करने की बात कहते है। स्वय के शुद्ध मन और सात्विकता का नाम ही महावीर के दृष्टि मे सम्यग्दर्शन है। महावीर के सम्यग्चारित्र का सिद्धात, वास्तव मे इसी सम्यग्दर्शन की जीवन मे अभिव्यक्ति है।

महावीर मनस्वी पुरुष है। मनस्वी का अर्थ यह नही है कि व्यक्ति सदा मन के बारे मे चिन्तन करता रहे। चिन्तन-मनन मनुष्य का धर्म है और इसी धर्म के सहारे मनुष्य ध्यान और समाधि मे प्रवेश करता है। महावीर मन की उस दशा को ध्यान कहते है, जहॉ सर्वतोभावेन मन एकाग्रता की गुफा मे प्रवेश कर जाता है। कहने मे हम कह दे, महावीर ने अभिनिष्क्रमण, चारित्र-पालन के लिए किया था, या धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिए किया था, पर सच तो यह है कि उन्होने जीवन मे नया अध्याय इसलिए प्रारम्भ किया ताकि वे बाहर एकाकी होकर, भीतर से भी एकाकी हो सके। महावीर का आज का सूत्र, साधना का सूत्र है। इस एक सूत्र के गर्भ मे अनत सभावनाए समायी हुई है। ध्यान और साधना का सार है यह सूत्र। महावीर कहते है—

ज थिरमज्झवसाण त झाण।

स्थिर अध्यवसान अर्थात् मानसिक एकाग्रता ही ध्यान है।

महावीर साधना मार्ग का स्वर्णिम सूत्र दे रहे है। ध्यान पर चर्चा करे उससे पूर्व, मन के सबध मे कुछ सोचे। आपने सुना है, 'अत मति

सो गति'। जीवन की अतिम सास मे जैसे भाव होते है, आगामी जन्म मे वैसा ही प्रतिफल प्राप्त होता है। मति मन की ही क्रिया है। इसलिए मन नरक की ओर भी ले जा सकता है और स्वर्ग की भी यात्रा करा सकता है। मृत्यु के समय मन की अशुभ प्रवृत्तियाँ जहाँ नरक का कारण बनती है, वही शुभ प्रवत्तियाँ स्वर्ग का। धर्म-जगत का अधिकाश सबध मन के साथ ही जुडा हुआ है। मृत्यु-वेला मे अशुभ भाव नरक के कारण बनते है और शुभ भाव स्वर्ग के। सहजत कल्पना की जा सकती है कि अगर उस समय शुभ व अशुभ दोनो ही भावो को समाप्त कर दिया जाए तो उस यात्रा की मजिल मोक्ष ही होगी। वास्तव मे मन से मुक्ति ही मोक्ष है।

मन जिसे सदैव ही दबाने की कोशिश की गई, उसकी भावनाओ के साथ बलात्कार किया गया, उसे कुठित करने का प्रयास किया गया, अगर उसे सही दिशा दिखाई जाती तो जो मन ससार का कारण है, वही समाधि का मूल भी बन सकता था। मन की शक्ति को आज तक कौन आक पाया है। वास्तव मे देखा जाये तो मन सर्वशक्तिमान है। इसमे ऊर्जा है, विद्युत प्रवाह है। आवश्यकता है इसके सदुपयोग की।

मन न तुम्हारा शत्रु है और न ही मित्र। अगर यह कहा जाए कि हमारी अशुभ प्रवृत्तियो का कारण मन है, तो शुभ प्रवृत्तियो का कारण कौन है ? शुभ हो या अशुभ, दोनो ही प्रवृत्तियाँ मन से ही जुडी हुई है, इसलिए मन के साथ कभी शत्रुता नही रखनी चाहिए। उसे मित्र बनाओ, जोर-जबर्दस्ती उसके साथ न चलेगी। अगर यह चाहते हो कि मन वही रहे जहाँ मै हूँ, मन वही करे जो मै चाहता हूँ तो मन को प्यार दो, मन को प्रेम दो। पाओगे, अब तक जिस शक्ति का दुरुपयोग हो रहा था, वही शक्ति तुम्हारे हाथो मे है।

मन की चचलता जग-प्रसिद्ध है। प्राय ऐसा ही होता है, जहाँ 'मै' रहता है वहाँ से मन फरार हो जाता है। कई शिकायते मेरे पास आती है, मन के बारे मे। कहते है लोग, अगर हम मन्दिर जाए तो मन मकान मे जाता है। अगर माला गिनने बैठें तो मन मलाई मे जाता है। दुकान जाए तो मन कहता है, घर चलो और घर जाए तो मन कहता है दुकान चलो। रूठा हुआ मन हमेशा वही काम करेगा, जिसे हम नही चाहते। काश्मीर मे रहने वाला कन्याकुमारी जाकर समुद्र की लहरे देखना चाहता है, और कन्याकुमारी मे रहने वाला काश्मीर आना

चाहता है, केसर की सुगन्ध लेना चाहता है। मन की यही गतिविधि है। उसे सदैव विपरीत का आकर्षण होता है, स्त्री मन को पुरुष का आकर्षण और पुरुष मन की स्त्री का आकर्षण।

मन का सम्बन्ध शरीर के हर तन्तु के साथ जुडा है, पर तभी तक जब तक शरीर का आत्मा से सम्बन्ध है। इसलिए मन शरीर मे तभी तक रहता है, जब तक शरीर मुर्दा न हो जाए। जन्म से लेकर मृत्यु तक मन की महत्ता को नजरअदाज नही किया जा सकता। बधन भी मन का परिणाम है और मुक्ति भी। 'मन एव मनुष्याणाम् कारणम् बध मोक्षयो।' मन ईश्वर कहलाता है, 'मन ही देवता मन ही ईश्वर, मन से बडा न कोय।'

मुझे हसी आती है उन लोगो पर, जो मन को दबाना चाहते है उसकी गतिविधियो को बलात् अवरूद्ध करना चाहते है। भला शक्ति को कभी दबाया जा सकता है, शक्ति को जितना अधिक दबाया जायेगा, वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली होती जायेगी। 'स्प्रिग' को दबाना उसमे और अधिक शक्ति पैदा करना है। मन को दबाने की नही, साधने की और समझने की कोशिश की जानी चाहिए। अगर मन को सही दिशा दी जाए तो, यह वह कार्य भी कर सकता है जो मुक्ति मे सहायक हो।

मन की समग्रता साधने के लिए हम मन एव उसके भीतरी-बाहरी परिवेश को समझने की चेष्टा करे।

मन, मस्तिष्क मे हो ऐसा नही है। कुछ लोग इसे मस्तिष्क मे मानते है। कई लोग इसका केन्द्र-बिन्दु हृदय मे मानते है। यह बात सही है कि मन की वृत्तियो से सर्वाधिक मस्तिष्क ही प्रभावित होता है, पर उसकी तरगे सम्पूर्ण शरीर मे प्रवाहित होती है। मन सक्रियता है, मन वृत्ति है। यह वहाँ-वहाँ जाना चाहता है, जहाँ-जहाँ तुम्हारे रागात्मक सम्बन्ध है। उन्ही का चिन्तन करता है, जिनसे तुम सम्मोहित हो। जो यह कहते है कि मन की चचलता के कारण ध्यान नही सधता, उन्होने वास्तव मे ध्यान को साधने की कोशिश ही नही की। वे अभी तक ध्यान के करीब ही नही पहुँचे है। जब ध्यान होता है तो मन अपने आप सध जाता है। जहाँ व्यक्ति का ध्यान, वही व्यक्ति का मन। जरा उन लोगो से पूछो जो यह कहते है कि माला और ध्यान मे मन भटकता है, पर जब वे फिल्म-हॉल मे फिल्म देखते है तो मन कहाँ भटकता है

? तीन घटे तक एक कुर्सी से चिपके है, उस समय मन न घर गया, न दुकान गया, न बैक और बाजार ही गया । इतने गहरे सम्मोहित हो जाते हो कि अगर पडोसी आवाज दे, तो भी बेसुध । यहॉ तुम्हारा ध्यान फिल्म की ओर है और इसलिए मन वहॉ टिका हुआ है। जितना गहरा रागात्मक सबध तुम्हारा पत्नी और पति के प्रति है,दुकानऔर मकान के प्रति है वैसा ही सम्मोहन अगर परमात्मा के प्रति हो जाये, तो ध्यान, माला और प्रार्थना मे मन भटके, इसकी गुजाइश कम है ।

हर कार्य मन ही कराता हो, ऐसी बात नही है । मन का भी कोई नियामक है जो उसके पीछे बैठा है । वह और कोई नही, तुम स्वय हो। मन सोचता नही है, अपितु तुम जो सोचते हो उसी का नाम मन है । मन से मनन होता है और मनन करने वाला ही मनस्विद होता है।

मै हिमालय की यात्रा पर था । जब मै गगोत्री पहुँचा तब, वहॉ केवल ध्यान साधक ही थे, आम दर्शनार्थी एक भी न था । कुछ ऐसे सन्त भी थे जो गोमुख से वहॉ आये हुए थे । एक नागा बाबा के बारे मे बताया गया कि वे तपोवन मे रहते है । गगोत्री मे, मै कई योगियों से मिला, यह समझने के लिए कि आखिर मन के नियमन का उपाय क्या है । एक योगी जो गोमुख मे रहते है, वहॉ आये हुए थे । जानकर आश्चर्य होगा कि उन्हे यह भी पता नही था कि ससार मे पुरुष और स्त्री–दो तत्त्व होते है । क्या ! मन्दिर और मस्जिद की राजनीति का उन्हे कोई ज्ञान नही था । चर्चा के दौरान मैने पाया कि उन्हे ससार से सम्बन्धित, कुल मिलाकर दस बातो का ज्ञान है । सासारिक चर्चाओ से उनका कोई सम्बन्ध भी नही है । जहॉ सम्बन्ध होता है, वहॉ सम्मोहन होता है । उस व्यक्ति का मन सौ जगह क्यो भटकेगा जिसका सम्बन्ध केवल दस लोगो से है । जितने पदार्थो के साथ हमारा सम्बन्ध होगा, मन की गतिविधियॉ उतनी ही बढेगी । जिस पत्नी के लिए आज मन तडप रहा है, विवाह से पूर्व क्या उसे एक दफा भी याद किया था ? तब तक उसके साथ कोई मानसिक सम्बन्ध भी न था । आज तुम जब ध्यान मे बैठते हो, तब कभी मन फ्रिज की ओर जाता है, कभी टी वी की ओर ! सहजत कल्पना की जा सकती है कि आज से मात्र पचास वर्ष पूर्व, सभवत किसी का मन टी वी और फ्रिज की ओर भटका भी न होगा ।

मन बहता है, अतीत के सवेग के कारण, अथवा भविष्य की

कल्पनाओ के कारण। अतीत के कुछ ऐसे राग-द्वेष मूलक सम्बन्ध होते है, जिनसे मन प्रभावित होता है और भविष्य की कुछेक ऐसी तृष्णाएँ होती है, जिनके लिए मन भटकता है। वर्तमान मे जीना ही अमन दशा है, मन से मुक्ति है। मन के भटकाव को रोकने के लिए, उसके प्रति विरक्ति लाभकारी है। अगर उससे जुडे तो वह मनचाही सैर कराता रहेगा। ध्यान मे देखो मन की गतिविधियो को, कहॉ-कहॉ जा रहा है। जहॉ-जहॉ मन जा रहा है, वहॉ-वहॉ रागात्मक सम्बन्ध कम करने की कोशिश करो। एक-एक सम्बन्ध कम होता जायेगा और मन का भटकाव थमता जायेगा। जहॉ-जहॉ मन भटक रहा है उसे भटकने दो। सम्बन्धो की भी एक सीमा है। थका-हारा मन, अन्तत वही लौटकर आ जायेगा जहॉ तुम स्वय हो।

मन का उचित उपयोग ही ध्यान बन जाता है और गलत उपयोग अहकार एव क्लेश। मन का उपयोग पागल भी करता है और मन का उपयोग बुद्ध भी करते है। लेकिन दोनो के उपयोग मे काफी फर्क है। पागल, मन के नियत्रण मे है और बुद्ध का मन नियत्रित है। प्रबुद्ध और उपशान्त मन जहॉ अस्तित्व के द्वार उद्‌घाटित करता है, वही भ्रमित मन क्लेश का कारण बनता है। जहॉ मन समाप्त हुआ, वही तुम्हारी समग्रता सधेगी। और जहॉ मन समग्र हो गया, वहॉ तुम्हारा अस्तित्व खतरे मे पड जायेगा। राजा के साथ भी चार सिपाही है और चोर, के साथ भी चार सिपाही है, लेकिन दोनो मे फर्क है। एक पक्ष मे चोर सिपाही से नियत्रित है, वही दूसरे पक्ष मे सिपाही, राजा के नियत्रण मे है।

'मन' और 'मै' मे सघर्ष की वृत्ति साधनात्मक जीवन के लिए लाभकारी नही कही जा सकती। सघर्ष होने पर दोनो मे खीचतान रहेगी और इस खीचतान का नतीजा मात्र दु ख ही है। मन तुम्हारा सखा है। इससे मैत्री के तार जोडो और धीरे-धीरे इसे अपने काबू मे करने की कोशिश करो। हम ध्यान मे इसलिए विचलित होते है क्यों कि मन बाहर की यात्रा करता है और हम उसे रोकने की कोशिश करते है। बैठे थे ध्यान करने और अन्तर्द्वन्द्व शुरू हो गया। बार-बार मन को पकडने की कोशिश की। मन को पकडकर टिकाना, अधेरी कोठरी मे बिल्ली पर डडे बरसाना है, ऐसी स्थिति मे जब बिल्ली कोठरी मे ही न हो। तो रात भर डडे बरसाते रहोगे, मारने वाला पसीने से तरबतर हो जायेगा, पर बिल्ली मरने वाली नही है।

बदर भले ही बूढा हो जाये, पर फदाके लगाना थोडे ही छोड पायेगा। मन की ऐसी ही प्रकृति है। इसे जाने दें, जहॉ यह जाना चाहता है। आखिर कहॉ तक जायेगा ? प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्धो की एक सीमा होती है। जैसे-जैसे सम्बन्ध बढते जाते है, वैसे-वैसे मन की तरगे फैलती जाती है। एक बच्चे का मन जितना विक्षिप्त होता है, उससे अधिक एक युवा का होगा और एक युवक का मन जितना भटकता है, उससे ज्यादा एक वृद्ध का भटकेगा। बचपन मे मन दूध से जुडा था, खिलौने से जुडा था, माता पिता से जुडा था, कुछ मित्रो से जुडा था। युवावस्था मे सम्बन्ध और बढे। पत्नी आई, परिवार बढा। मकान और दुकान हुए, सैकडो के साथ राग और द्वेषमूलक सम्बन्ध हुए। जितने सम्बन्ध हुए, उतनी ही गतिविधियॉ भी बढी। जितना बाहर का ससार फैलाओगे, मन-उतना ही अधिक चचल होगा। ध्यान मे बैठे हो, मन अपनी गतिविधियॉ प्रारम्भ करने जा रहा है, कही बाहर जाना चाह रहा है। उचित यह रहेगा कि उसके साथ जोर-जबर्दस्ती न की जाए। जहॉ जाना चाहे, वही उसे जाने दे। आखिर कहॉ तक जायेगा ? जिन-जिन के साथ सम्बन्धो के तार जुडे है, उन्ही मे से कुछ एक के पास जाकर वह वापस वही लौट आयेगा, जहॉ तुम हो। एक दिन जायेगा, दो दिन जायेगा, पाच और दस दिन जायेगा, लेकिन अन्तत उसे उद्गम स्थल की ओर ही आना पडेगा। आता-जाता, अपने आप थक जायेगा। फिर वह थका-हारा मन तुम्हारे ध्यान मे सहायक बनेगा।

एक व्यक्ति प्रार्थना मे बैठा था। कुछ गीत गुन-गुना रहा था। अचानक किसी पक्षी की आवाज सुनाई दी। उसे याद आया, बबई मे एक दिन मैने ऐसी ही आवाज सुनी थी। अब मन की गतिविधियॉ प्रारम्भ हो गई। इतनी देर तक मन प्रार्थना से जुडा था। मन को चचलता देने के लिए एक पक्षी की आवाज ही काफी थी। पक्षी की आवाज ने उसे बबई की याद दिला दी। स्मृति मन से जुडी रही। जो अब तक प्रार्थना से जुडा था, वही मन अब किसी घटना से जुड गया। याद आया बबई मे मै किसी के घर गया था। घर का सम्पूर्ण ढॉचा दिखाने के लिए एक स्मृति ही काफी थी। तरगे बडी सूक्ष्मता से प्रवाहित होती है। अब यह याद आने लगी थी कि उस व्यक्ति के साथ क्या बातचीत हुई थी। बातचीत मे उस व्यक्ति ने बताया था कि दिल्ली से कलकत्ता की मुसाफिरी के बीच उसका लडका मर गया था, अब मन मुसाफिरी से जुडा, दिल्ली और कलकत्ता से जुडा।

उपनिषद का एक प्रिय वचन है-'य इह मनुष्याणाम् महत्तान प्राप्नुवन्ति ध्यानो पादांशा इवैव ते भवन्ति।' जिस किसी मनुष्य को जिस किसी कार्य मे प्रसिद्धि मिलती है, उसके मूल ध्यान है, मन की एकाग्रता है। ऐसा नही है कि ध्यान केवल किसी एक आसन पर बैठने से ही सधता हो, जीवन के हर घटनाक्रम से ध्यान जुडा हुआ है। एक वैज्ञानिक का ध्यान, कुछ आविष्कारो के साथ जुडा हुआ है, डॉक्टर का ध्यान रोगो के साथ जुडा हुआ है। विद्यार्थी का ध्यान, ब्लैकबोर्ड के साथ जुडा हुआ है। अगर ऐसा न हो, किसी कार्य को ध्यानपूर्वक न किया गया तो सफलता कभी हाथ न लगेगी। महावीर तो यहाँ तक कहते हैं कि बैठो भी ध्यान से, चलो भी ध्यान से, बोलो भी ध्यानपूर्वक। ध्यानपूर्वक किसी भी कार्य को करोगे तो पाप कर्म का बधन नही होगा।

जय चरे जय चिट्ठे, जय मासे जय सये।

जय भुजतो भासतो, पावकम्म न बधई।

कीमत यतना की है, विवेक की है, तुम्हारे ध्यान की है। हालाकि इन सब मे ध्यान सालम्बन होता है, किसी एक पदार्थ के साथ जुडा रहता है। यहाँ इतनी सफलता अवश्य प्राप्त हो जाती है कि सौ जगह भटकता मन एक जगह आकर टिक जाता है। लेकिन मन की असली परीक्षा तो आलम्बन रहित ध्यान मे होगी, जहाँ मन को टिकाने के लिए कोई विषय न हो, वही मन असली स्वरूप दिखायेगा। इस स्थिति का शात होना ही ध्यान है, योग है, समाधि है।

महावीर कहते है 'मानसिक एकाग्रता ही ध्यान है।' वास्तव मे मन का चारित्र बडा विचित्र है। लम्बे अरसे तक एकाग्रता तो दूर की बात है, चन्द मिनटो के लिए भी एक कमरे मे नही बैठ सकता। लोग, मन की चचलता की तुलना बदर से करते है। पर मन, इस तरह की उपमा से भी बहुत आगे है। मन की शक्ति के सामने, बदर की शक्ति नगण्य है और नगण्य है उसकी चचलता भी। बदर चचलता का प्रतीक है लेकिन उसे भी शात किया जा सकता है, एक ठौर पर बाधा जा सकता है, उसकी गति की एक सीमा है। लेकिन मन! न इसे बाधा जा सकता है और नही पता लगाया जा सकता है कि इसके कितने ठौर-ठिकाने है।

महावीर हमे मनस्वी बनाना चाहते है, एकाग्र करना चाहते है। और उसी एकाग्रता का नाम ही तो ध्यान है। अशुभ से शुभ की ओर, शुभ से शुद्धत्व की ओर यात्रा करना, यही साधनात्मक जीवन का विकास है। ध्यान तो अशुभ मे भी हो सकता है। इसलिए महावीर ने अशुभ ध्यान के लिए दो शब्द प्रयुक्त किये—आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान। ये दोनो ध्यान के विकृत रूप है। लेकिन जिस ध्यान का सम्बन्ध आत्म तत्त्व के साथ है, वह तो शुभ और शुद्धत्त्व मे ही हो सकता है।

ध्यान व्यभिचारी का भी होता है। और सही मे इतना गहरा ध्यान होता है कि अगर उतनी गहराई से परमात्मा के प्रति जुड जाए, तो जीवन का काया-कल्प हो सकता है। व्यभिचारी ध्यान मे जीता है, लेकिन यह अशुभ है। ध्यान का मतलब सिर्फ मानसिक एकाग्रता नही है। उन गलियारो से भी है जिससे होकर ध्यान मे पहुँचा जाता है। शक्कर जितनी मीठी होती है उससे ज्यादा 'सेक्रिन' मीठा होता है। माना कि, जिह्वा को तो दोनो ही मिठास देते है लेकिन दोनो मिठास

को एक मानकर, सेक्रिन का उपयोग करना जीवन के साथ तो खिलवाड ही कहा जायेगा।

वैसे एक चोर, व्यभिचारी या विषयभोगी मानसिक रूप से एकाग्र तो हो सकता है, लेकिन वह एकाग्रता भी उस स्नान की तरह है जिसने व्यक्ति कीचड के नाले मे स्नान करता है। यह क्षणिक एकाग्रता भी चित्त चाचल्य मे सहायक बनती है।

ध्यान, चित्त का स्नान है, चित्त की प्रसन्नता है। भीतर मे उपजने वाला एक अहोभाव है, जैसे-जैसे व्यक्ति शुभ-दृष्टि या सम-दृष्टि मे प्रवेश करता है वैसे-वैसे सर्वत्र मागल्य के भाव पैदा होते है। यह तो चित्त का स्नान है शुभ-दृष्टि, सम-दृष्टि और सर्वत्र मागल्य-भाव यह सच मे गगा, यमुना, सरस्वती का सगम है, जीवन का तीर्थ है, और इसी मे स्नान कर व्यक्ति चित्त को प्रक्षालित करता है, और आने वाले कल का तीर्थकर बन जाता है।

शुद्धि और प्रसन्नता—ये चित्त के वे दो परिणाम है जिन्हे हम एकाग्रता की पूर्व सीढियॉ कह सकते है। यह क्रमश विकास है। महावीर ने इसी मार्ग से मजिल को हासिल किया था। आत्मविकास, यह ध्यान का अतिम चरण तो हो सकता है लेकिन प्रथम चरण तो, स्व पर विकास ही होना चाहिए। सर्वत्र मागल्य की कामना, शुभ-दृष्टि और सम-दृष्टि मे जीना, चित्त को निर्मल करना। चित्त की इस निर्मलता को ही मै ध्यान का पहला चरण कहता हूँ। शुद्धि और प्रसन्नता से एकाग्रता की सीढी पर पाव बढते है और धीरे-धीरे ऐसा क्रमिक विकास होता है कि व्यक्ति विचार-शकर से मुक्त हो जाता है।

महावीर कहते है, 'चित्त की एकाग्रता यही ध्यान है'। इस सूत्र को हमे गहराई से समझना है क्योकि चित्त की एकाग्रता कही भी सध सकती है। परन्तु चित्त को एकाग्र करने से पूर्व चित्त का निर्मलीकरण करना आवश्यक है। यदि गन्दे पात्र मे साफ पानी भी डाला गया तो पानी गन्दला हो जायेगा।

चित्त को शुद्ध कैसे किया जाए ? सुखी से मैत्री और दु खी के प्रति करुणा चित्त के निर्मलीकरण मे सहायक बन सकती है। पूण्य से प्रेम और पाप के प्रति करुणा, ये सब वे साधन है जो चित्त को धीरे-धीरे बेदाग कर देते है यदि चित्त को निर्मल करना चाहते हो तो सर्व प्रथम पहली क्रिया प्रारम्भ करो कि मै दोष नही देखूगा। दोष भले ही, अपने

हो या पराये उनकी ओर नजर मत डालो। क्योकि दोष हमेशा, हमारी नजरो को अपवित्र करते है और चित्त की निर्मलता को समाप्त करते है, इसलिए अपने और पराये सभी दोषो को नजर-अदाज करते जाओ अगर देखना चाहते हो तो गुणो को देखो, उन्हे बढावा दो, पुन-पुन उनका स्मरण करो, ऐसा करने से गुण अपने आप बढते जायेगे और दोष दबते जाएगे।

जैसे-जैसे आयु बढती है, वैसे-वैसे सम्बन्ध और फैलते जाते है और सम्बन्धो का फैलाव चित्त चाचल्य का सेतु है। बचपन मे गिने-चुने सम्बन्ध थे, युवा अवस्था मे वे और ज्यादा फैलते गये और वृद्धावस्था मे तो हम सम्बन्धो के जाल मे ही उलझ जाते है। एक बात तय है कि सम्बन्धों की प्रगाढता चित्त की चचलता मे सहायता देती है।

चित्त की एकाग्रता के लिए आत्म-स्मरण की कम, आत्म-अनुभव की ज्यादा जरूरत है। मै आत्मा हूँ ,इसका पुन-पुन जाप करने से आत्म- अनुभव नही होगा। विश्वास हो जाएगा, पर यह तो ऐसा होगा कि हम भूल न जाये इसलिए पुन-पुन स्मरण करके उसको पक्का किया जाता है। मै मनुष्य हूँ, इसका जाप करने की आवश्यकता नही है, अनुभव करने की आवश्यकता है। चित्त को एकाग्र करने की पूर्व भूमिकाओ मे, हम कुछ-एक आलम्बन भी स्वीकार कर सकते है। जैसे- मदिर मैं बैठकर किसी मूर्त्ति को निहारना। नजरो की एकाग्रता से चित्त की एकाग्रता मे सहायता मिलती है। लम्बी अवधि तक परमात्मा की मूर्त्ति को निहारने से, परमात्म स्वरूप को आत्मसात् करने की शक्ति तो मिलती ही है, अनेक स्थानो पर भटक रहा मन एक स्थान पर भी टिक जाता है। मत्र का जाप भी तो इसलिए किया जाता है ताकि मन किसी एक विचार पर आकर केन्द्रित हो जाए। सम्भव है कि सालम्बन ध्यान मे भी चित्त की चचलता जारी रहे, लेकिन क्रमश अभ्यास से यह चचलता भी समाप्त हो जाती है। मूर्त्ति, चित्र, अर्थचितन, नामस्मरण आदि ऐसे अनेक आलम्बन है, जो ध्यान की पूर्व भूमिका मे हमे सहायता दे सकते है।

सालम्बन ध्यान से दो कदम आगे बढने के बाद, यह प्रयास किया जाना चाहिए कि दो विकल्पो के बीच के समय के अतराल को बढाते जाए। जैसे-जैसे हम विकल्पो के बीच की दूरी को बढाते जाएगे वैसे-वैसे ध्यान और बढता जाएगा क्योकि विकल्पो के बीच की शून्य अवस्था ही

के दर्पण मे पूर्व जन्म प्रतिबिम्बित नही होता है, अन्यथा एक जन्म के सम्बन्धो की जानकारी मे मन की चचलता इतनी पराकाष्ठा पर है और मन को साधे बिना अगर अतीत के हजार वर्षो की जानकारी मिल जाये तो मनुष्य पर पागलपन का भूत सवार हो जायेगा। बीस-तीस वर्ष की स्मृति मे तो विक्षिप्त हुए जा रहे हो। अगर हजार वर्ष पूर्व की स्मृति हमारे हाथ लग गई तो क्या इस विक्षिप्तता का कोई अत होगा। इसलिए अतीत और भविष्य दोनो से मुक्त होकर,व्यक्ति जब वर्तमान का अनुपश्यी बनता है, तभी, वह आत्म तत्त्व को उपलब्ध कर पाता है।

'मै कौन हूँ' यह प्रश्न तुम कब से करते आये हो इसका पता नही है। कल भी करते थे, आज भी करते हो। 'मै कौन हूँ' यह भी रटा-रटाया प्रश्न और 'मै आत्मा हूँ' यह भी सुना-सुनाया उत्तर। जब प्रश्न भीतर से नही उपजा है, तब उत्तर भीतर से कैसे आयेगा ? 'मै कौन हूँ' इसलिए भी नही पूछा जाना चाहिए कि कभी तुम्हारे गुरु भी सुबह उठकर पूछा करते थे। किसी प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हजार-हजार दफे गुन-गुनाना नही पडता है। प्रश्न आया है बाहर से और उत्तर पूछ रहे हो भीतर से। 'अह को आसी', 'कोऽहम्' और 'मै कौन हूँ'—हजारो वर्ष पहले भी इन्सान यह प्रश्न पूछता आया है और आज भी पूछता है। 'मै कौन हूँ' यह एक खोज की यात्रा थी और हमने इसे एक जप, जाप की यात्रा बना ली। 'मै आत्मा हूँ' इसकी अनुभूति तो आवश्यक है पर जाप करना आवश्यक नही। 'मै मनुष्य हूँ' इसका जप कहाँ आवश्यक है ? इसलिए 'मै कौन हूँ', 'कोऽहम्' से 'सोऽहम्' 'सोऽहम्' से हसोऽहम्' और 'हसोऽहम्' से 'शिवोऽहम' की सहयात्रा, यह जीवन की अनुभव पूर्ण उपलब्धि है। लेकिन इन सबको एक मत्र के रूप मे स्वीकार करके, केवल रटन करना और ग्रन्थि-विमोचन का उपक्रम न करना, यह साधना मार्ग की अपूर्णता ही कही जायेगी।

महावीर कहते है 'मानसिक एकाग्रता ही ध्यान है।' मन शक्ति का स्वामी है। हमारे जीवन मे इससे शक्तिशाली तत्त्व आत्मा के सिवा और कोई नही हो सकता। आत्मा का पुद्‌गल परिणमन ही तो मन है। इसलिए भाव-मन आत्मा है, और द्रव्य-मन के अतर्गत हमारे विचार आते है, मन के समस्त सवेग आते है। ये सब द्रव्य-मन के अन्तर्गत ही है। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति भाव-मन को जागृत करता है और द्रव्य-मन की उच्छृखलताओ को समाप्त करता है। यहाँ एक बात समझने जैसी है कि ध्यान तब सधता है जब मानसिक एकाग्रता हो और मानसिक

एकाग्रता तव होती है जव ध्यान का आलम्बन हो। इसलिए ध्यान और मानसिक एकाग्रता दोनो का अन्योन्याश्रित सबध है। ध्यान का सहारा लेकर ही व्यक्ति मानसिक एकाग्रता मे प्रवेश कर पाता है और क्रमश विकास करते हुए साधक समाधि मे प्रवेश करता है। मन की शक्ति जो इधर-उधर विखरी हुई है, और इसी बॅटने, विखेरने और टूटने के कारण ही हम उसकी शक्ति का सदुपयोग नही कर पाते है। यह हर दिशा मे गति कर सकता है, हर कार्य मे प्रवेश कर सकता है और अतीत व भविष्य की प्रत्येक कल्पना कर सकता है। शरीर के जितने भी अवयव है, सबकी शक्ति सीमित है। आख सिर्फ देख सकती है, कान सिर्फ सुन सकते है, नाक व मुह की भी अपनी सीमित शक्तियाँ है, लेकिन इसके बावजूद इन सम्पूर्ण शक्तियो का स्वामी अकेला मन है।

महावीर यह नही कह रहे है कि तुम मन को दबाओ, इसके साथ जोर-जबरन करो, उसकी टॉग खीचो। यह सब ध्यान नही हुआ, ध्यान के नाम पर सिर्फ छलावा है। क्योकि मन जिसे अब तक सिर्फ बधन का ही कारण माना गया, बेचारे को सदा दबाया गया। काश, इसे मुक्ति का भी कारण माना जाता। अगर ऐसा किया जाता तो मन की ऊर्जा को एक सही दिशा निर्देश मिलता,और 'मन को मारो' के वजाय 'मन को समझो' की भाषा होती। इसलिए ध्यान न तो मन को मारना है, न दबाना है और न ही बाधना है, ध्यान तो मन की एकाग्रता है। सौ दिशाओ मे भटकता मन, किसी एक तत्त्व पर केन्द्रित हो गया, यही ध्यान है। वह बात गौण है कि वह तत्त्व क्या है, भले ही वह तत्त्व परमात्मा हो या पत्नी, दुकान हो या मकान, मन्दिर हो या मूर्त्ति कोई भी तत्त्व क्यो न हो, जहॉ पर भी एकाग्रता सधी, इसी का नाम ध्यान।

एक बच्चा कक्षा मे बैठा है, अध्यापक पाठ पढा रहा है, बच्चे की नजर खिडकी से बाहर जाती है, देखता है चिडिया अपने बच्चो के मुह मे एक-एक दाना डाल रही है। इसे देखने मे वह इतना एकाग्र हो जाता है कि वह कक्षा मे है, इसका भी उसे भान नही रहता। अचानक एक चॉक का टुकडा उसके सिर से टकाराता है। अध्यापक कहता है, 'तुम्हारा ध्यान किधर है।' छात्र सकपका जाता है, ध्यान उसका भग हो जाता है। अध्यापक सोचता है, छात्र का ध्यान विचलित है जब कि छात्र पूरी तरह से ध्यान मे है।

ध्यान चाहे शुभ का हो या अशुभ का, ध्यान तो आखिर ध्यान ही है। इसलिए महावीर ने आर्त और रौद्र चिन्तन को भी ध्यान की सज्ञा दी। धर्म-चिन्तन और शुक्ल-चिन्तन—सभी मनीषियों ने इसे ध्यान माना। लेकिन इस सदर्भ मे महावीर और दो कदम आगे बढे, कहा—'आर्त और रौद्र—अशुभ चिन्तन, यह भी ध्यान है।' तुलसीदास के जीवन की वह घटना महावीर के इस चिन्तन के साथ हू-ब-हू मेल खाती है जब उनकी पत्नी कहती है, जितना तुमने मेरा (काम का) चिन्तन किया, उतना ही अगर राम का करते तो बेडा पार हो जाता। चिन्तन जारी है, फिर चाहे वह राम का हो या काम का।

यह महावीर की विशेषता है कि वे अशुभ को भी ध्यान की सज्ञा देकर व्यक्ति को ध्यान मे प्रवेश कराना चाहते है। गुणस्थान के क्रम मे महावीर ने केवल सम्यक्त्व को ही गुणस्थान नही माना। उन्होंने गुणस्थान क्रम की शुरुआत ही मिथ्यात्व से की है। वे कर्दम मे से कमल निखारना चाहते है। मिथ्यात्व मे से सम्यक्तव का फूल खिलाना चाहते है, अशुभ मे ही शुभ का बीजारोपण करना चाहते है।

महावीर कहते है 'मानसिक एकाग्रता एकाग्रता की आवश्यकता, मात्र अध्यात्म के मार्ग मे ही नही है। हम जो भी कार्य करे, एकाग्रता के साथ, तन्मयता के साथ, अपने आप को पूरी तरह जोडकर अहोभाव के साथ। चाहे सूर ने इकतारा बजाया हो, मीरा की करताल चली हो या घुघुरुओं की थिरकन हो, कबीर ने चाहे कपडे बुने हो, रैदास ने जूते सिये हों या गोरा ने मिट्टी पर थापे दी हों आखिर इन सबको इनसे उपलब्धि तो एकाग्रता और तन्मयता से ही हुई है। जिन्हे हम ध्यान और साधना के विराधक तत्त्व मानते है, व्यक्ति अगर पूरी तन्मयता के साथ उन कृत्यों को पूर्ण करे तो ये कृत्य भी सालम्बन ध्यान मे उपयोगी हो सकते है। एक साथ कई कृत्यों और वस्तुओं का ध्यान करना हमारी कर्मशक्ति मे तो बढोतरी कर सकता है, हम इसे अपनी क्षमता का विकास भी मान सकते है, लेकिन ध्यान-शक्ति का विकास तभी होगा जब व्यक्ति, किसी एक कृत्य मे पूरी तरह से तन्मय हो। घडी के सारे पुर्जे बिखरे पडे हों तो सबके सब बेकार है। लेकिन उन सबको अगर व्यवस्थित रूप से एकत्रित कर दिया जाये तो, समय तुम्हारे हाथ मे बध जायेगा। शक्ति को बिखेरना यह कार्य है और उन्हे इकट्ठा करना, यह ध्यान है। जब ये दोनों सध जाते है उसी का नाम प्रज्ञा जागरण है।

इसलिए महावीर व्यक्ति को मन की विकृतियो की जानकारी देने के वाद, सुकृत का दिशा-निर्देश भी कराते है। महावीर वधन मे से ही विमोचन की कल्पना कर रहे है। जो मन तुम्हे बाध रहा है वही मन तुम्हे मुक्ति भी दे सकता है। ध्यान के लिए मानसिक एकाग्रता आवश्यक है, पर मै एक बात और कहना चाहूगा कि इस एकाग्रता का सही मागदर्शन होना भी आवश्यक है।

हमारी वीमारियों का कारण, ९०% केवल मन है। रोग और इलाज के कारण और स्थान परिवर्तित हो जाते है, लेकिन मूल उत्पत्ति स्थान नही वदल पाता। अगर वृक्षो की जडो मे रोग फसा है तो, पत्तो का इलाज करने से क्या लाभ और किस-किस पत्ते को सुधारोगे। जिसकी जड कडवी है, चाहे उसका फल चखो या फूल, पत्ते चखो या डालियाँ, कडवाहट तो सर्वत्र मिलेगी। पत्ते-पत्ते मे कडवाहट फैली है इसका कारण डालियाँ नही है, वृक्ष की शाखाए भी नही है, इसका कारण जड है, वीज है। एक व्यक्तित्व मे ही क्रोध है, अहकार है, माया और लोभ है, राग और द्वेष है, जीवन का हर चरण दूषित है, किस-किस चरण को सुधारोगे ? हम अपनी वृत्तियो के किसी एक तत्त्व को दवायेगे तो दूसरा तत्त्व उभरेगा, क्रोध को दवायेगे तो वासना उभरेगी, लोभ को दवायेगे तो माया उभरेगी, राग को दवायेगे तो द्वेष उभरेगा, इसलिए इनको दवाने की वजाय, इनके मूल उत्स को ढूढो। अगर वह सुधर गया तो सब कुछ सुधर जायेगा। अगर वीज मे छिपी कडवाहट को निकाल दिया जाये तो फल भी मीठे होगे, फूल भी और पत्ते भी मीठे होगे। जैसे वृक्ष मे गुण और अवगुण का कारण जड होती है वैसे ही मनुष्य मे गुण और अवगुण का कारण मन होता है। मनुष्य की जड मन है। जो मन से जड है, वह मनुष्य। आदमी आदम से वना, मै मन से वना, इसलिए मनुष्य को मन से तो कभी अतिरिक्त किया ही नही जा सकता। हॉ अशुभ से शुभ की ओर दिया जाने वाला दिशा निर्देश, यह मनुष्य मे भगवत्ता की तलाश है।

हमे तीन तत्त्व प्राप्त हुए है—आत्मा, मन और देह। इन तीन तत्त्वो का एक छोर आत्मा है दूसरा छोर देह है और जो वीच मे है इसी का नाम मन है। यह जो वीच मे वैठा है यही दोनो को प्रभावित करता है। जब यह देह मे जाकर जुडता है तब ससार का जन्म होता है और जब आत्मा से जाकर जुडता है तब समाधि पैदा होती है। यह वात सही है कि व्यक्ति जो कुछ करता है उसका मूल नियामक तो वह स्वय ही

होता है जिसे हम आत्मा कहते है लेकिन इनकी पूरी गतिविधियो का सचालन मन करता है।

आत्मा न तो शुभ करती है न अशुभ करती है। वह मन को साधन बनाकर शुभ-अशुभ दोनो प्रवृत्तियाँ करा लेती है। इसलिए गगोत्री तो केवल गगा का उत्स है, पवित्रता का उद्‌गम स्थल है लेकिन मन पवित्रता का भी उद्‌गम स्थल है, और अपवित्रता का भी। क्रोध भी इसी से प्रकट होता है और क्षमा भी। क्रोध अशुभ मन का परिणाम है और क्षमा शुभ मन का। जो सीढी ऊपर की ओर ले जाती है, उसी सीढी से नीचे की और वापस आना पडता है और मन उस बदर सा है, जो इस सीढी पर निरन्तर उछल-कूद करता रहता है। कभी क्रोध मे, कभी क्षमा मे, कभी राग मे, कभी द्वेष मे, कही अहकार मे, कही नम्रता मे, कही लोभ मे, कही सतोष मे—एक ही मन, एक ही दिन मे इन सबमे परिवर्तित होता रहता है। घर पर पत्नी से लडकर आये और किसी गुरु के पास जाकर धोक लगाने लगे, स्वय को विनम्र प्रगट करने लगे, निश्चित रूप से व्यक्ति को विनम्रता और क्षमाभाव मे जीना चाहिए लेकिन क्रोध और वैमनस्य को छिपाकर प्रदर्शित की जाने वाली क्षमा या आत्मीयता मन की प्रपचपूर्ण वृत्ति नही तो और क्या है ?

सब एक दूजे से प्रगट होते है। जब-जब व्यक्ति के अहकार को चोट लगती है, तब-तब क्रोध पैदा होता है। जब-जब अपेक्षा, उपेक्षा मे बदलती है, तब-तब अहकार पैदा होता है। व्यक्ति दूसरे के आचार, व्यवहार सब कुछ वैसे ही देखना चाहता है जो उसके मनोनुकुल हो। जब-जब मन के प्रतिकूल कोई प्रतिक्रिया होती है, हम असतुष्ट हो जाते है और जैसे चुल्हे पर दूध उफनता है वैसे ही हमारे मन मे उफान आने लगते है। जब-जब व्यक्ति के भीतर उफान उठता है तब-तब व्यक्ति तूफान खडा करता है। एक ऑफिसर की यह अपेक्षा रहती है कि जब मै आफिस मे जाऊँ, चपरासी मुझे सलाम करे। यदि यह अपेक्षा पूरी न हुई तो मन मे विपरीत सवेग पैदा होते है। एक पति की अपेक्षा रहती है जब वह आफिस से घर पहुँचे तो पत्नी मुस्कुराहट के साथ स्वागत करे। जब ऐसा नही होता है तब भीतर से झल्लाहट पैदा होती है। वास्तव मे इन सबको मर्यादा की सज्ञा देकर हम मीठे अहकार मे जीते है और जहर तो जहर ही होता है चाहे, वह मिश्री घुला भी क्यो न हो।

व्यक्ति के, मन के सवेग तभी विपरीत धर्मी बनते हैं, जब विपरीत वातावरण उसके सामने उपस्थित होता है, प्रत्येक विपरीत वातावरण मे, अपने आपको अनुपस्थित समझना या स्वय को साक्षी-भाव या दृष्टा-भाव मे स्थित कर लेना, मानसिक एकाग्रता का प्रथम और आवश्यक साधन है। हम प्रशसा से प्रसन्न होते है, भले ही वह झूठी हो। किसी स्त्री को तुम सुदर कह दो वह खुश होगी। सच तो यह है कि जब हम क्रोध मे होते हैं, तब कुरूप होते है, जब क्षमा मे होते हैं तब सुदर होते है। तुम नही जानते हो जब तुम क्रोध करते हो तब तुम्हारा मन ही नही, तुम्हारा चेहरा भी कितना विकृत हो जाता है। कभी क्रोध करने के तत्काल बाद जाकर आइने मे अपना चेहरा देखो, वीभत्सता दिखाई देगी। और कभी क्षमा-भाव मे भी आइने पर नजर डालो, चेहरे पर सौन्दर्य झलकेगा। आखिर क्रूरता और करुणा मे कुछ तो फर्क होता ही है।

आज के सूत्र मे, महावीर ध्यान पर चर्चा करने से पूर्व, मानसिक एकाग्रता पर जोर दे रहे है। आखिर हमे वे सूत्र भी ढूढने होगे, जिनसे चचल मन का निग्रह किया जा सके। गीता के कृष्ण कहते हैं 'अभ्यासेन   अभ्यास और वैराग्य से चचल मन का निग्रह किया जा सकता है।' जैसे-जैसे व्यक्ति एक क्रमिक अभ्यास के द्वारा स्वय को राग से विराग की ओर गति देता है, वैसे-वैसे वह वीतरागता के समीप पहुॅचता है। मन को एकाग्र करने के लिए कुछेक साधन भी है—पहला साधन है, भोगो से वैराग्य। व्यक्ति अपने आपको धीरे-धीरे भोगो से भी निर्लिप्त करने का प्रयास करे। ससार मे तो जनक भी रहे थे, भरत भी रहे थे लेकिन उन्होने ससार मे भी समाधि के सूत्र ढूढे। मै यह भी नही कहता कि ससार छोडकर जगल मे जाकर बस जाओ। क्योंकि ऐसा करने से, आज जिनके साथ तुम्हारा रागात्मक सबध है, उनके साथ द्वेषमूलक सबध स्थापित हो जायेगा। वैराग्य का अर्थ यह तो नही है कि तुम किसी के राग को द्वेष मे बदल दो। जैसे राग, वैराग्य का विपरीत धर्मी तत्त्व है, वैसे ही द्वेष भी विपरीत धर्मी है। इसलिए वीतराग वह है, जो राग और द्वेष दोनों से मुक्त हो चुका है।अगर भोगो से व्यक्ति अपने आपको क्रमश उपरत करेगा तो, परिणाम यह होगा कि व्यक्ति का राग भाव कम होगा और द्वेष भाव पैदा नही हो पायेगा।

मन की एकाग्रता के लिए हमे मन की क्रियाओ पर विचार करना

चाहिए । रात को सोते समय मन के अच्छे-बुरे सभी कार्यो पर विचार करे । अच्छे सकल्पों की सराहना और बुरे विकल्पो के प्रति करुणा, अगर व्यक्ति प्रतिदिन ऐसा करता है तो परिणाम यह निकलेगा कि सत्कर्म के प्रति सकल्प बढते जायेगे और दुष्कर्म से पुनर्वापसी होगी । हम कोशिश करे कि मन को हर समय सत्कर्म मे सलग्न रखेगे । आवश्यकतानुसार निर्देश दे अपने विपरीत सवेगो को पहचाने, और उन सबके प्रति साक्षी भाव मे लौटने का प्रयास करे । अशुभ से शुभ की ओर प्रारम्भ की गई यह यात्रा, अत मे शुद्धत्व-सिद्धत्व की मजिल प्राप्त करा देती है । हमारी यह मजबूरी है कि हमारा मन कभी निकम्मा नही रह सकता तो अच्छा यह होगा कि उसे मागलिक कार्यो मे सलग्न करे । जब मन अनेक सत्कर्मो मे सलग्न हो जाये तब उसे एकाग्र करने का प्रयास करे ।

मन की एकाग्रता के लिए हम सालम्बन ध्यान का भी प्रयोग कर सकते है, जैसे ज्योति को एकटक निहारना । साध्य-वेला मे एकात स्थान पर एक दीप प्रज्ज्वलित करे । पाच मिनट, दस मिनट या पद्रह मिनट उसे एकाग्रता के साथ निहारने का प्रयास करे । वह अकम्प ज्योति आपके मन को भी अकम्प कर सकती है । पहले खुली आखो से उसे निहारे, फिर उस ज्योति को अपनी ही नेत्र से छोटा करे । जैसे-जैसे आप उसे छोटा करते जायेगे, वह धुधली पडती जायेगी । आख बद करने के बाद दोनो भौंहो के बीच ललाट पर अपनी दृष्टि लगाकर तब तक देखते जाये जब तक भीतर मे निर्धूम ज्योति का अभ्यास न हो जाये । बाहर की ज्योति का सहारा लेकर, भीतर की ज्योति को प्रगट करने की यह सामान्य प्रक्रिया है । इसी तरह खिलते हुए फूल को निहारना, झरने से बहती जलधारा को निहारना या मूर्ति को देखना, ये सब प्रक्रियाएँ भी हमारी मानसिक एकाग्रता मे सहायक सिद्ध हो सकती है । प्रारम्भ मे फूल बाहर खिलेगा और अत मे भीतर । क्रमिक अभ्यास से आप पायेगे जो जलधारा बहिर्मुखी है, वह अतर्मुखी होती जा रही है । मूर्ति के परमात्मा को निहारते-निहारते तुम अपने भीतर परमात्मा को प्रगट कर लोगे । जैसे अशुभ तत्त्व का चिन्तन हमारे भीतर अशुभ तत्त्व को मूर्त रूप देता है वैसे ही शुभ भी मूर्त रूप ले सकता है । क्योकि मन का स्वभाव है वह जिस किसी वस्तु तत्त्व या पदार्थ का चिन्तन करता है, उसे अपने भीतर मूर्त रूप भी दे देता है । अगर एक माँ विदेश मे रहने वाले पुत्र के बारे मे सोचती-विचारती है, तो उसकी

''ध्यान कृत्यो से छुटकारा नही दिलाता, कर्तृत्व-भाव से दिलाता है। एक आम नागरिक की तरह, ध्यानी भी वे सभी कृत्य करता है जिनकी जीवन मे अनिवार्यता है, पर दिशा भिन्न होती है। वहाँ नजरे वे नही होती जिनमे ससार की छाया हो। उसके हर कृत्य मे एक सजगता होगी, साक्षी-भाव का सहारा लिये। उस साधक के द्वारा अगर मक्खी को भी उडाया जा रहा है, तो कृत्य इतना सहज सरल होगा मानो मक्खी अपनी ही आत्मा हो।''

भी यदि समीक्षक बीच-बचाव करे तो, दोपाये के शरीर की इतर सम्भावनाओ को ध्यान मे रखते हुए, चौपाये की बजाय लाजवाब और बेशकीमती है ।

अनुभव की गहराई, कल्पना की ऊँचाई, सस्कार की लम्बाई और बोध की चौडाई ही खासकर शरीर की एक जैसी नस्लो के मध्य अलगाव-रेखा खीचती है ।

इसलिए मनुष्य-शरीर का होना भी एक बडा चमत्कार है । इस चमत्कार का लाभ न उठाना सीधी बगावत है । अपनी महान् उपलब्धि पर अहकार न हो, पर सन्तोष करते हुए उसका उपयोग अवश्य हो । मनुष्य शरीर मे ऐसे अनेक तत्त्व है, जिनकी गतिविधिया प्रतिपल चलती रहती है, पर उनका दर्शन अशक्य है । वे मात्र अनुभव गोचर ही है। आत्मा, चित्त, मन आदि वे सूक्ष्म तत्त्व है जिन्हे चीर-फाड करके भी देखा-दिखाया नही जा सकता एव जिनके शरीर से भिन्न होने पर, शरीर मात्र एक पिंजरा भर रह जाता है ।

शरीर, आत्मा और मन ये तीनो एक दूजे से जुडे है । देह एव मनोमुक्ति ही मोक्ष है । शरीर और आत्मा का सीधा सम्बन्ध है । मन इन दोनो के बीच का वह पहलू है, जो क्रिया-प्रतिक्रिया के लिए शरीर और आत्मा, दोनो को प्रेरित करता है । अत साधना-मार्ग मे देह-दण्डन एव आत्म-दण्डन पर कम, मनोदण्डन पर अधिक दबाव डाला गया है। बन्धन एव मुक्ति दोनो का मूल कारण मन को स्वीकार किया गया है, 'मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो ।'

शरीर के पार हम मन है । मन उर्जा का पिंड है । दिनरात भटकते मन को अगर सही दिशा मिल जाये, तो उसी मन से मनोविज्ञान पैदा हो सकता है, और उसी मन से ऊपर उठने की चैतन्य क्षमता । हमे मन को मारना नही, साधना है । वीणा को तोडना नही, तारो को जोडना है ।

जबसे इस दुनिया मे मानव-देह अवतरित हुई है, देह मे आत्म-शक्ति प्रकट हुई है, तभी से मन इन दोनो के साथ जुडा हुआ है । शरीर की क्रियाए करने के लिए मन प्रेरक है, वही आत्म-शक्तियो को दबाने मे भी मन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । ध्यान हो या योग, पूजा हो या प्रार्थना, सभी मे मनोनिग्रह महत्वपूर्ण है । मन का निग्रह करना कठिन है, पर अभ्यास व वैराग्य से यह भी शक्य है ।

मन आत्म और अनात्म पदार्थ के बीच रहने वाला विशेष तत्त्व है, कहने मे यह भले ही जड हो, लेकिन कभी-कभी तो इसकी शक्ति आत्म-शक्ति को भी दबा देती है। चचल अवस्था मे इसकी गति जहा हर गति से बढकर है, वही शात मन ध्यान मे और अधिक सहयोगी होता है। मन विकारी है। इसका कार्य ही सकल्प-विकल्प करना है। यह जिसको भली-भाति ग्रहण करता है, स्वय उसी मे तदाकार भी हो जाता है।

अतीत के खण्डहर और भविष्य की कल्पनाए यही जिन्दगी है। मन, अतीत और भविष्य के बीच का वह पेडुलम है, जो कभी अतीत की ओर जाता है तो कभी भविष्य की ओर। बीते को विसराना और भविष्य की चिन्ताओ से मुक्त होना, वर्तमान मे जीने के लिए उठाये जाने वाला पहला कदम है। चाहे अतीत हो या भविष्य—दोनो ही व्यक्ति को भटकाते है। साधक वह है, जो सजगता के साथ वर्तमान का उपयोग करता है। जिदगी की जिदादिली वर्तमान का उपयोग करने मे ही है।

अतीत की पुनर्वापसी असभव है और भविष्य की आकाक्षाओ की पूर्ति हाथ के बाहर है। ऐसी स्थिति मे वर्तमान का पाई-पाई उपयोग, जीवन मे अहोभाव पैदा कर सकता है। वर्तमान मे जीना, मन की चचलता को समाप्त करता है। मन को वही बदल सकता है, जिसने बदलने का अभ्यास किया है। व्यक्ति वर्तमान की चिता कम और भविष्य की अधिक करता है, यह जानते हुए भी कि आनेवाला कल उसका निर्माण भी कर सकता है और विनाश भी।

अगर पुनर्जन्म का सिद्धात सही है, तो कहना पडेगा कि व्यक्ति हर जन्म मे ही बीते कल को याद करता रहा है और आने वाले कल की चिन्ता करता रहा है। भविष्य के वैभव को, सपनो मे निहारकर वर्तमान खोता रहा –

न कोई जादा न कोई मजिल न रोशनी का सुराग।

भटक रही है खलाओ मे जिदगी हर बार॥

जिदगी मे कोई रास्ता तो हाथ लगा ही नही। पता नही कितनी दफा अधेरी घाटियो मे जिदगी खो चुके है, लेकिन न तो मजिल हाथ लगी, न रोशनी का सुराग।

व्यक्ति राहत के लिए स्वय मजिले बनाता है। चाहे वे मजिले और

भी यदि समीक्षक बीच-बचाव करे तो, दोपाये के शरीर की इतर सम्भावनाओ को ध्यान मे रखते हुए, चौपाये की बजाय लाजवाब और बेशकीमती है।

अनुभव की गहराई, कल्पना की ऊँचाई, सस्कार की लम्बाई और बोध की चौडाई ही खासकर शरीर की एक जैसी नस्लो के मध्य अलगाव-रेखा खीचती है।

इसलिए मनुष्य-शरीर का होना भी एक बडा चमत्कार है। इस चमत्कार का लाभ न उठाना सीधी बगावत है। अपनी महान् उपलब्धि पर अहकार न हो, पर सन्तोष करते हुए उसका उपयोग अवश्य हो। मनुष्य शरीर मे ऐसे अनेक तत्त्व है, जिनकी गतिविधिया प्रतिपल चलती रहती है, पर उनका दर्शन अशक्य है। वे मात्र अनुभव गोचर ही है। आत्मा, चित्त, मन आदि वे सूक्ष्म तत्त्व है जिन्हे चीर-फाड करके भी देखा-दिखाया नही जा सकता एव जिनके शरीर से भिन्न होने पर, शरीर मात्र एक पिंजरा भर रह जाता है।

शरीर, आत्मा और मन ये तीनो एक दूजे से जुडे है। देह एव मनोमुक्ति ही मोक्ष है। शरीर और आत्मा का सीधा सम्बन्ध है। मन इन दोनो के बीच का वह पहलू है, जो क्रिया-प्रतिक्रिया के लिए शरीर और आत्मा, दोनो को प्रेरित करता है। अत साधना-मार्ग मे देह-दण्डन एव आत्म-दण्डन पर कम, मनोदण्डन पर अधिक दबाव डाला गया है। बन्धन एव मुक्ति दोनो का मूल कारण मन को स्वीकार किया गया है, 'मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो ।'

शरीर के पार हम मन है। मन उर्जा का पिंड है। दिनरात भटकते मन को अगर सही दिशा मिल जाये, तो उसी मन से मनोविज्ञान पैदा हो सकता है, और उसी मन से ऊपर उठने की चैतन्य क्षमता। हमे मन को मारना नही, साधना है। वीणा को तोडना नही, तारो को जोडना है।

जबसे इस दुनिया मे मानव-देह अवतरित हुई है, देह मे आत्म-शक्ति प्रकट हुई है, तभी से मन इन दोनो के साथ जुडा हुआ है। शरीर की क्रियाए करने के लिए मन प्रेरक है, वही आत्म-शक्तियो को दबाने मे भी मन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ध्यान हो या योग, पूजा हो या प्रार्थना, सभी मे मनोनिग्रह महत्वपूर्ण है। मन का निग्रह करना कठिन है, पर अभ्यास व वैराग्य से यह भी शक्य है।

मन आत्म और अनात्म पदार्थ के बीच रहने वाला विशेष तत्त्व है, कहने मे यह भले ही जड हो, लेकिन कभी-कभी तो इसकी शक्ति आत्म-शक्ति को भी दबा देती है। चचल अवस्था मे इसकी गति जहा हर गति से बढकर है, वही शात मन ध्यान मे और अधिक सहयोगी होता है। मन विकारी है। इसका कार्य ही सकल्प-विकल्प करना है। यह जिसको भली-भाति ग्रहण करता है, स्वय उसी मे तदाकार भी हो जाता है।

अतीत के खण्डहर और भविष्य की कल्पनाए यही जिन्दगी है। मन, अतीत और भविष्य के बीच का वह पेडुलम है, जो कभी अतीत की ओर जाता है तो कभी भविष्य की ओर। बीते को बिसराना और भविष्य की चिन्ताओ से मुक्त होना, वर्तमान मे जीने के लिए उठाये जाने वाला पहला कदम है। चाहे अतीत हो या भविष्य—दोनो ही व्यक्ति को भटकाते है। साधक वह हैं, जो सजगता के साथ वर्तमान का उपयोग करता है। जिदगी की जिदादिली वर्तमान का उपयोग करने मे ही है।

अतीत की पुनर्वापसी असभव है और भविष्य की आकाक्षाओ की पूर्ति हाथ के बाहर है। ऐसी स्थिति मे वर्तमान का पाई-पाई उपयोग, जीवन मे अहोभाव पैदा कर सकता है। वर्तमान मे जीना, मन की चचलता को समाप्त करता है। मन को वही बदल सकता है, जिसने बदलने का अभ्यास किया है। व्यक्ति वर्तमान की चिता कम और भविष्य की अधिक करता है, यह जानते हुए भी कि आनेवाला कल उसका निर्माण भी कर सकता है और विनाश भी।

अगर पुनर्जन्म का सिद्धात सही है, तो कहना पडेगा कि व्यक्ति हर जन्म मे ही बीते कल को याद करता रहा है और आने वाले कल की चिन्ता करता रहा है। भविष्य के वैभव को, सपनो मे निहारकर वर्तमान खोता रहा –

न कोई जादा न कोई मजिल न रोशनी का सुराग।
भटक रही है खलाओं मे जिदगी हर बार॥

जिदगी मे कोई रास्ता तो हाथ लगा ही नही। पता नही कितनी दफा अधेरी घाटियो मे जिदगी खो चुके है, लेकिन न तो मजिल हाथ लगी, न रोशनी का सुराग।

व्यक्ति राहत के लिए स्वय मजिले बनाता है। चाहे वे मजिले और

मुकाम मात्र घरौंदे ही हो, फिर भी व्यक्ति उस झूठ मे भी सच की परछाई देखता है। नीत्से ने सच कहा है, 'व्यक्ति झूठ के बिना जी नही सकता।'

व्यक्ति झूठे सपने देखता है, झूठे जाल बुनता है और औरो के सहारे चलने वाली जिदगी को अपनी जिदगी समझता है। जब कोई व्यक्ति ससार-सागर को तैरने के लिए हाथ चलाता है तव लोग रोते है, माँ-बाप हाय-तौबा मचाते है, खुदकशी करने की धमकी देते है और जब कोई डूबने की तैयारी करता है तो, दुनिया उसे धक्का मारती है। सन्यास के लिए बढने वाले कदम को रोका जाता है और ससार की ओर बढने वाले कदम को सहारा दिया जाता है।

ससार तो एक बाजार है। क्या नही मिलता है यहाँ ! स्वय को छोडकर सभी कुछ तो मिलता है। जो पाने योग्य है उसे छोडकर, सब कुछ मिलेगा दुनिया मे। जो कुछ मिलता है ससार मे, सब कुछ वह है जिसे पाने पर, पाने की चाह और फैलती जाती है, 'जल कुछ ऐसा मिलता है कि प्यास घटती नही, जलन बुझती नही, तृप्ति आती नही।'

जिसे पाकर, ससार मे सब कुछ पाने की चाह चली जाती है, बस वह ससार मे नही मिलेगा। उसकी बिक्री बाहर नही, अपने अन्तर्-जगत मे हो रही है।

मनुष्य मन उस बच्चे-सा है, जो मेले मे जाकर सब कुछ पाना चाहता है। हर चीज को खरीदने के लिए ठिठक जाता है। बच्चा साझ ढलते सारी चीजे भी खरीद ले, उनसे कुछ समय के लिए आशा भी बध जाती है, पर अगले दिन फिर कुछ पाने की इच्छा होती है। मन भी इसी प्रकार पुनरुक्ति करता है। मन विविध जाल बुनता है। कई सबध स्थापित करता है। कईयो से गलबाही करता है तो कइयो से कट्टी। जोड-तोड मे कई रिश्ते बनते-बिगडते है। जब जन्म भी अपना नही, मौत भी अपनी नही, तो ये बीच के रिश्ते-नाते अपने कैसे हो सकते है? सब मन की तरकीबे है, मन के जाल है। तभी तो कबीर ने कहा—मन के जाल हजार।

व्यक्ति भविष्य की चिता मे खोया रहता है। स्वर्ग की कल्पनाए करता है। सोचता है, स्वर्ग मे अपार ऐश्वर्य को प्राप्त करूगा। जिन अप्सराओ का अब तक नाम सुना है, उनके साथ जीऊँगा, स्वर्ग मे आखिर मौज-मस्ती के सिवा है ही क्या ? पर, स्वर्ग की कल्पनाओ मे

खोने वाला इसान स्वर्गीय होने को कहाँ राजी है ? उसे भरोसा है कि मर कर वह स्वर्ग मे जाएगा, लेकिन फिर भी मौत से घबराता है। जो होता है सब कुछ मजबूरी मे होता है।

सब कुछ मन की चचलता का परिणाम है। मन भविष्य के लिए व्यक्ति को भटकाता है और जब भविष्य वर्तमान बन जाता है तो, मन उसे अस्वीकार कर देता है। कल चैतन्यमूर्ति, मन के सबध मे ही चर्चा कर रहे थे और मन की सजगता के बारे मे, कई जिज्ञासाए भी। मन की सजगता के बारे मे कृष्णमूर्ति का सिद्धात काफी महत्वपूर्ण है। वे कहते है 'चॉयसलैस अवेयरनेस' यानि चुनाव रहित सजगता, ऐसी जागरूकता जिसमे अच्छे-बुरे का चुनाव न हो, स्वर्ग-नरक का चुनाव न हो। क्योकि चुनाव, केवल एक के प्रति राग की अभिव्यक्ति ही नही है, अपितु दूसरे के प्रति द्वेष की भी अभिव्यक्ति है। इसमे एक को नकारना है, दूसरे की स्वीकार करना है। अगर खन्ना को मोहर लगाई, तो अपने आप सिन्हा को नकार दिया। इसीलिए कृष्णमूर्ति कहते है, 'सजगता, चुनाव रहित हो।'

मन की परेशानी का मूल कारण ही चुनाव है। जो प्राप्त है, उसमे सतुष्टि नही है और जो अप्राप्त है, उसके लिए तृष्णा है। जो है , उसमे तृप्ति यही वर्तमान मे जीना है।

घर से पत्नी को छोडकर ऑफिस की ओर रवाना हुए, पत्नी ने मुस्कुराते हुए ऑफिस जाने के लिए विदा दी, पर जैसे ही वहा किसी और को देखा, उसके साथ आखे दो-चार कीं, कि चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। अब घरवाली मे सौ दोष और उसमे उतनी ही विशेषताए दिखाई देने लगी। जिस घर मे रह रहे है कई दशको से, वही हम कभी दुखी होते है, कभी सुखी। एक पडोसी का सात मजिला मकान आर्थिक योग्यताओ पर प्रश्नचिह्न खडा करता है, वही दूसरे पडोसी की झोपडी हमारी योग्यताओ को बढ़ावा देती है। व्यक्ति चुनाव करता है। सात मजिले मकान को देखकर जहा उसकी तृष्णा जाग्रत होती है और वह स्वय को दु खी महसूस करता है, वही झोपडी को देखकर उसे आत्मसतुष्टि होती है यह सोचकर कि मै उससे बढकर हूँ।

परेशानी मन की है, मन को है, मन से है। मन का मार्ग शाति तक है ही नही। सुख मिलता है, पर दुख का पुट साथ लिए। स्वर्ग मिलता है पर नरक की प्रतीति साथ लिए। फूल तो हाथो मे आया है,

पर कॉटे उससे पहले ही गड गये है । राग और द्वेष मन के दो विकल्प है । ये ही दो ऐसे तत्त्व है, जो आम ससारी को रागी, साधक को विरागी और साध्य को वीतरागी सिद्ध करते है । राग, विराग और वीतराग मे फर्क है, इसके रहस्य को समझे । राग ससार है, विराग सन्यास है और वीतराग समाधि है । विराग मे राग-मुक्ति तो होती है लेकिन द्वेष-मुक्ति नही । स्थिति ऐसी होती है, जब ससार मे थे पैसे से राग था , जब सन्यास मे है तो उसी से द्वेष हो गया । जब दुनिया मे थे तो स्त्री के प्रति आसक्ति थी और जब सन्यास मे आए तो उसी के प्रति द्वेष पैदा हो गया, निरादर की भावना पैदा हो गई । वीतरागी साधक वह है, जो हर उपलब्धि मे भी साक्षी-भाव मे जी रहा है ।

ऐसा ही हुआ, गुरु और शिष्य, दोनो पदयात्रा कर रहे थे । बीच मे नदी आ गई । नदी मे पानी अधिक गहरा नही था, फिर भी नाभि तक तो था ही । दोनो ने सोचा, चलो, नदी पार कर ले । पास मे एक युवती खडी थी। उसने गुरु से कहा, 'महाराज ! आप उस पार जा रहे है । मुझे भी उस पार जाना है, पर नदी पार करते भय लगता है । कृपया, मेरा हाथ पकडकर उस पार ले चले ।

गुरु आगबबूला हो गये । कहने लगे, 'तुझे शर्म नही आती है, हम साधु जो स्त्री को छू भी नही सकते है, भला हाथ कैसे पकड सकते है?' गुरु ने स्त्री को बुरा-भला कहा और पार जाने के लिए पानी मे उतर गया ।

शिष्य अभी भी इस पार था युवती ने उससे भी प्रार्थना की । उस युवा सन्यासी ने सोचा, भला इसे उस पार ले जाने मे क्या आपत्ति है और यह भी सोचा जब दोनो को ही नदी पार करना है तो क्यो न एक के ही वस्त्र गीले किए जाए । अगर उसे मेरा हाथ पकडने मे कोई खतरा नही है, तो मुझे उसका हाथ पकडने मे क्या खतरा ? उसने युवती को कधे पर बैठाया और नदिया के उस पार ले गया । युवती ने आभार ज्ञापन किया और अपने घर की ओर रवाना हो गई और साधु अपने मार्ग पर चला गया । तीन-चार मील चला होगा कि गुरु ने पूछा 'तूने उसे कधे पर क्यो बैठाया, क्या यह साधु का धर्म है ?'

शिष्य ने कहा, 'किसे ?'

गुरु कहने लगा, 'जिसे मैने छूने से भी इकार कर दिया था उस युवती को ।'

शिष्य मुस्कुराया। कहने लगा, 'गुरुवर! आपमे और मुझमे यही फर्क है। मैने उस युवती को जहा उतारा वही भूल गया और आप उसे अभी भी ढोए जा रहे है।

पता नही, मन कब विचलित हो जाए। ऐसा न समझे कि एक पच्चीस साल के युवक का मन भटक सकता है। हकीकत तो यह है कि एक साठ साल के वृद्ध का मन भी भटक सकता है। एक युवक तो अपने विचलित मन को, अपनी इच्छा-शक्ति और आत्म-शक्ति से शात कर देगा, लेकिन किसी वृद्ध का पाव फिसल गया तो सम्हलना उसके हाथ मे नही रहेगा। मैने कहा, 'राग और द्वेष दोनो विकल्प है।' यह सच है और यह भी सच है कि जिससे राग होता है, उसी से द्वेष होता है। बिना राग के, द्वेष कभी पैदा ही नही हो सकता। भला जिसके साथ सयोग नही वहा वियोग कैसे होगा, जहाँ सबध नही वहाँ विच्छेद कैसे होगा, वियोग और विच्छेद तो सयोग और सबध का परिणाम है। मृत्यु-जन्म का परिणाम है। जन्म के अभाव मे मृत्यु कभी घटित हो ही नही सकती। बिना राग के द्वेष कैसा ? इसलिए साधक को वीतरागी होने की प्रेरणा दी गई, वीतद्वेषी नही।

जो द्वेष-मुक्त है, वह राग-मुक्त हो यह आवश्यक नही है लेकिन जो राग-मुक्त है वह तो द्वेष-मुक्त होगा ही। इसलिए मन को शात करने के लिए और उसके भटकाव को रोकने के लिए, राग-मुक्ति आवश्यक है। मन की गति उस ओर होती है जहा राग है, आसक्ति है, सम्मोहन है। जिसे कभी देखा नही, सुना नही, जिससे मेल-मिलाप नही हुआ, उस ओर मन भला कैसे जाएगा। जिसकी याद मे आज आसू बहा रहे हो, जरा सोचे, सम्बन्ध होने से पहले क्या कभी उसके लिए एक तरग भी आई थी। चाहे बाटा हो या बासमती या बबई, जिस किसी के साथ सम्बन्ध है, मन उस ओर ही गति करता है। इसलिए चित्त की चपलता को शात करने के लिए सम्मोहन से मुक्ति आवश्यक है। दुनिया के जितने भी सम्बन्ध है, सब सयोग है और सयोग कभी स्वभाव नही हो सकता। कल जिसने जान से मारने की कोशिश की थी, आज उसी पर अपना दिल दिया जा रहा है। मन का क्या, आज जिसके साथ गलबाही कर रहा है कल, उसी को धक्का मार देगा। आज जिससे हाथ मिलाने के लिए हाथ बढा रहा है कल, उसी को हाथ दिखा देगा। यह मन की उलटबाजी है। गिरगिट का रग

भला एक जैसा हो सकता है ? उसका रग तो वैसा ही होगा, जहा वह है।

ऐसा नही है कि केवल गिरगिट ही रग बदलता हो, हर इसान अपना रग बदल रहा है। कल तक जो मित्र थे, आज शत्रु हो गये है। कुछ दिन पहले तक जो प्रशसा कर रहे थे, आज निन्दा कर रहे है। राग द्वेष मे बदल रहा है, मैत्री दुश्मनी मे बदल रही है और करुणा घृणा मे बदल रही है। ये सब की सब मन की तरकीबे है। आज के सूत्र मे महावीर इन्ही मन की तरकीबो से छुटकारा दिलाना चाहेगे और प्रवेश कराना चाहेगे, ध्यान मे। आत्मा की उस दशा मे, जहाँ न शरीर रहता है, न मन रहता है और न वचन रहता है। आज का सूत्र है—

जह चिर सचियमि धन-मनलो पवण सहिओ दुय दहइ।

तह कम्मेधणमिय, खणेण झाणोनलो डहइ ॥

जैसे चिरसिचित ईधन को वायु से उद्दीप्त आग तत्काल जला डालती है, वैसे ही ध्यान रूपी अग्नि, अपरिमित कर्म-ईधन को क्षणभर मे भस्म कर डालती है।

यह सूत्र सम्पूर्ण महावीर-दर्शन का सार है। साधना की वह यात्रा है, जो गगासागर से गगोत्री की ओर जाती है। महावीर ने इस सूत्र मे ध्यान रूपी अग्नि को प्रज्ज्वलित करने की प्रेरणा दी है। ध्यान समस्त आगमो का सार है चाहे भक्ति हो, सेवा हो, पूजा हो, प्रार्थना हो सब ध्यान के विविध रूप है। महावीर ध्यान के सहारे कर्म ईधन को जलाना चाहते है, समाप्त करना चाहते है। ध्यान का अर्थ है—द्रष्टाभाव, साक्षीभाव। ध्यान वहा है जहा व्यक्ति अपने आप मे लौट आता है। महावीर ध्यान के माध्यम से सन्तुलन की भाषा सिखा रहे है। जैसे-नृत्यकार रस्सी पर सन्तुलन को खोने नही देता, पतली-सी रस्सी पर पाव चलते है लेकिन नृत्यकार न इधर गिरता है, न उधर गिरता है। जो ध्यान की रस्सी पर चलता है वह जीवन का नृत्यकार बन जाता है वह न राग की ओर गिरता है न द्वेष की ओर गिरता है, उसकी यात्रा होती है विराग और वीतराग की ओर।

महावीर ने कहा, 'ध्यान रूपी अग्नि से', ध्यान पर मै कुछ कहना चाहूँगा। भक्ति सहज है, पूजा प्रार्थना भी सरल है लेकिन ध्यान सबसे कठिन साधना है। एक पल भी अगर पॉव डगमगा गया तो शिखर से

सीधे तलहटी मे पहुँच जाओगे। ध्यान कैसे करे ? मन को एकाग्र करना, ध्यान की शुरूआत है और मन से मुक्ति, ध्यान का अन्तिम चरण है। महावीर कहते है कि मन हमेशा निर्णय से निर्मित होता है। किसी ने सुख दिया, हमने उसके लिये शुभ कामनाए दी और जिसने दु ख दिया, उसके लिये बद्दुआए दी। जहॉ-जहाँ निर्णायक स्थिति होती है वहा-वहा मन की चचलता और बढ़ती जाती है।

महावीर ने प्रव्रजित होने के बाद करीब बारह वर्ष तक साक्षी-भाव और द्रष्टाभाव मे जीने की कोशिश की। अगर अप्सराओ ने आकर उनके शरीर को सहलाया, तो भी ध्यान मे डूबे रहे और अगर किसी ने कानो मे कीले ठोकी, तो भी ध्यान मे डूबे रहे। न अप्सराओ के प्रति राग पैदा हुआ और न ही कानो मे कील ठोकने वाले ग्वाले के प्रति द्वेष।

महावीर साधक को साक्षी-भाव मे इसलिए लाना चाहते है क्योकि साक्षी-भाव मे पहुँचकर, साधक स्थितप्रज्ञ होता है।

महावीर ध्यान की अग्नि से कर्म-ईंधन को जलाना चाहते है। कर्म ईंधन को भस्मिभूत करने का सबसे कारगर उपाय है, साक्षी-भाव मे जीना। जो है, वह है, उससे अलिप्त रहना यही साक्षी-भाव है। न वहा राग होता है और न द्वेष होता है। मधुर की तृष्णा नही, कडुवाहट से वैर नही, ये सब ही तो साधको के चरण है।

साक्षीभाव कर्म-ईंधन को जलाता है क्योकि साक्षी-भाव मे राग और द्वेष दोनो का अभाव होता है और महावीर कहते है, 'रागो य दोसो बीय कम्म बीय' राग और द्वेष कर्म के बीज है। ससार की फसल इन दो बीजो से होती है। ये दो बीज नष्ट हो गये तो अपने आप कर्म समाप्त हो जायेगे। साक्षीभाव ध्यान है और ध्यान, कर्म रूप ईंधन को जलाने का साधन है। साक्षीभाव मे किया कुछ नही जाता है, सब कुछ होता है, सहज स्वाभाविक।

जीवन का विशुद्ध आनन्द होने मे अधिक है, करने मे कम है। जब हम कुछ नही करते है, तब आनन्द का झरना झरता है। अगर इस झरने के उत्स को ढूढेगे कि यह कहा से बहता है तो उलझन मे फस जाएगे। यह हर ओर से बहता है, दसो दिशाओ से झरता है।

ध्यान करना नही, होना है, जीना है। मन, वचन और शरीर तीनो

से जब सभी क्रियाए समाप्त हो जाती है तो, ध्यान सधता है। अत ध्यान कोई क्रिया नही है, आडम्बर नही है। हकीकत तो यह है कि क्रिया-मुक्ति ही ध्यान है। यदि क्षण भर के लिए भी हम कुछ न करे, पूर्ण विश्राम मे प्रवेश करे, तो ध्यान सधेगा। अगर एक दफा भी सफलता हाथ लग गयी तो जब तक ध्यान मे जीना चाहे, जी सकेगे।

अगर एक बार व्यक्ति यह बोध प्राप्त कर ले कि अतरग कैसे अनुद्वेलित हो सकता है, तो वह होश को साधते हुए धीरे-धीरे अन्तर्-जगत की क्रियाए प्रारम्भ कर देगा। सर्वप्रथम होने मात्र की कला सीखे, फिर छोटे-छोटे कृत्यो को सहजता से करने की। जैसे भोजन बनाना, बर्तन साफ करना, स्नान करना आदि, इन्हे करते हुए स्वय को केन्द्रीभूत बनाये रखना, यही ध्यान का पूर्वाभ्यास है। पाप-पुण्य क्रिया मे नही, यतना-अयतना मे है।

छोटे-छोटे कृत्यो से अपने साक्षीभाव को पुष्ट करे। एक-एक बूँद का समूह सागर बन जाता है। एक-एक किरण के जुटने से महासूर्य का जन्म हो जाता है। ऐसे ही छोटी-छोटी समझ, छोटी-छोटी अन्तर्-दृष्टि को एकत्रित करे, यही धीरे-धीरे समाधि के राजमार्ग पर पहुँचाएगी।

जिन लोगो ने ध्यान को जीवन-विरोधी या कृत्य-विरोधी माना वे अपने-आपसे विरोध कर बैठे है। ध्यान न तो जीवन से पलायन है और न ही भगोडापन। ध्यान तनाव-मुक्ति एव चित्त-शुद्धि का स्वाभाविक साधन है। ध्यान मे जीवन का प्रवाह थमता नही है और अधिक त्वरा से जारी रहता है, जीवन कही अधिक आनन्दपूर्ण, स्पष्टतापूर्ण, और सृजनात्मकतापूर्ण होता है। विशेषता यह रहती है कि सब कुछ करते हुए भी, आत्मा निर्लिप्त रहती है। वह अपने निकटवर्ती सूत्रो के साथ घटित होने वाली घटनाओ का सहजतया अवलोकन करती है, पर्वत के शिखर पर खडे हुए द्रष्टा की भाति।

यह बात गौरतलब है कि ध्यान कृत्यो से छुटकारा नही दिलाता, कर्तृत्व-भाव से दिलाता है। एक आम नागरिक की तरह, ध्यानी भी वे सभी कृत्य करता है जिनकी जीवन मे अनिवार्यता है, पर दिशा भिन्न होती है। वहाँ नजरे वे नही होती जिनमे ससार की छाया हो। उसके हर कृत्य मे एक सजगता होगी, साक्षी-भाव का सहारा लिये। उस साधक के द्वारा अगर मक्खी को भी उडाया जा रहा है, तो कृत्य इतना सहज सरल होगा मानो मक्खी अपनी ही आत्मा हो। मक्खी का उडना

न उडना गौण है, यहॉ मुद्दे की बात यह है कि उडाते समय हम कितने सजग है।

साक्षीभाव कैसे आत्मसात् किया जाये ? प्रश्न महत्वपूर्ण है। वास्तव मे साक्षित्व ध्यान की आत्मा है। साक्षीभाव खोया यानि ध्यान से चूक गये, मन की गतिविधियॉ हम पर हावी हो गयी। जैसे, उपवन मे कोयल कुहु-कुहु कर रही है, हम सुन रहे है। इनमे दो बाते है एक बोल रही है, एक सुन रहा है। ऐसा लगता है इस कृत्य मे दो तत्व सक्रिय है। लेकिन इन दोनो के बीच एक और तथ्य है, जिसे हम पहचान नही पाते, वह है साक्षित्व।

हम क्या देख रहे है, यह गौण है। हम वृक्ष को भी देख रहे है, नदी को भी देख रहे है और आकाश को भी देख रहे है। इन सबके साथ देखना यह है कि हम किन नजरो से देख रहे है। हम साक्षीभाव से फिसल तो नही गये है। अगर हम नही फिसलते है, तो परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे दृष्टाभाव सघन हो जाएगा, थिर. अकप धीरे-धीरे रूपान्तरण होगा वे सब वस्तुएँ विलीन हो जाएँगी। विकास द्वार उद्‌घाटित होगे। चेतना आत्म-लीन हो जाएगी, दृष्टा ही दृश्य और ज्ञाता ही ज्ञेय हो जाएगा।

हम भोजन करते है। भोजन को कभी पचाना नही होता अपने आप पचता है, जैसे अपने आप, सूर्य सुबह उदित होता है और साझ ढलते डूब जाता है, ऐसे ही भोजन की प्रक्रिया है, अगर शरीर सही सलामत है, तो सुबह का भोजन शाम को और शाम का भोजन सुबह पच जायेगा। जैसे यह प्रक्रिया अपने आप सचालित होती है, ऐसी ही विचार और ध्यान की प्रक्रिया है। विचारो के प्रति मूर्च्छा न होना, यह ध्यान का भोजन है और पचना अपने आप होता है। पचना यानि भोजन का रक्त बनना, ध्यान की गहराई मे उतरना, जैसे भोजन करके पाचन-क्रिया शरीर पर छोड दी जाती है वैसे ही ध्यान करके समाधि की क्रिया, चैतन्य-शक्ति के हाथ छोड दी जानी चाहिये।

यद्यपि मनुष्य स्वय भोजन नही पचाता, शरीर पचाता है, पर वह उसकी पाचन प्रक्रिया मे बाधा अवश्य डाल देता है। ध्यान के सम्बन्ध मे भी यही सत्य है आप ध्यान मे गहरे नही उतर सकते, अगर उतरने की घडी भी आ जाये तो बाधा डाल देते है। विचारो के प्रति सूक्ष्मतम चुनाव और झुकाव यही ध्यान की बाधा है।

से जब सभी क्रियाए समाप्त हो जाती है तो, ध्यान सधता है। अत ध्यान कोई क्रिया नही है, आडम्बर नही है। हकीकत तो यह है कि क्रिया-मुक्ति ही ध्यान है। यदि क्षण भर के लिए भी हम कुछ न करे, पूर्ण विश्राम मे प्रवेश करे, तो ध्यान सधेगा। अगर एक दफा भी सफलता हाथ लग गयी तो जब तक ध्यान मे जीना चाहे, जी सकेगे।

अगर एक बार व्यक्ति यह बोध प्राप्त कर ले कि अतरग कैसे अनुद्वेलित हो सकता है, तो वह होश को साधते हुए धीरे-धीरे अन्तर्-जगत की क्रियाए प्रारम्भ कर देगा। सर्वप्रथम होने मात्र की कला सीखे, फिर छोटे-छोटे कृत्यो को सहजता से करने की। जैसे भोजन बनाना, बर्तन साफ करना, स्नान करना आदि, इन्हे करते हुए स्वय को केन्द्रीभूत बनाये रखना, यही ध्यान का पूर्वाभ्यास है। पाप-पुण्य क्रिया मे नही, यतना-अयतना मे है।

छोटे-छोटे कृत्यो से अपने साक्षीभाव को पुष्ट करे। एक-एक बूँद का समूह सागर बन जाता है। एक-एक किरण के जुटने से महासूर्य का जन्म हो जाता है। ऐसे ही छोटी-छोटी समझ, छोटी-छोटी अन्तर्-दृष्टि को एकत्रित करे, यही धीरे-धीरे समाधि के राजमार्ग पर पहुँचाएगी।

जिन लोगो ने ध्यान को जीवन-विरोधी या कृत्य-विरोधी माना वे अपने-आपसे विरोध कर बैठे है। ध्यान न तो जीवन से पलायन है और न ही भगोडापन। ध्यान तनाव-मुक्ति एव चित्त-शुद्धि का स्वाभाविक साधन है। ध्यान मे जीवन का प्रवाह थमता नही है और अधिक त्वरा से जारी रहता है, जीवन कही अधिक आनन्दपूर्ण, स्पष्टतापूर्ण, और सृजनात्मकतापूर्ण होता है। विशेषता यह रहती है कि सब कुछ करते हुए भी, आत्मा निर्लिप्त रहती है। वह अपने निकटवर्ती सूत्रो के साथ घटित होने वाली घटनाओ का सहजतया अवलोकन करती है, पर्वत के शिखर पर खडे हुए द्रष्टा की भाति।

यह बात गौरतलब है कि ध्यान कृत्यो से छुटकारा नही दिलाता, कर्तृत्व-भाव से दिलाता है। एक आम नागरिक की तरह, ध्यानी भी वे सभी कृत्य करता है जिनकी जीवन मे अनिवार्यता है, पर दिशा भिन्न होती है। वहाँ नजरे वे नही होती जिनमे ससार की छाया हो। उसके हर कृत्य मे एक सजगता होगी, साक्षी-भाव का सहारा लिये। उस साधक के द्वारा अगर मक्खी को भी उडाया जा रहा है, तो कृत्य इतना सहज सरल होगा मानो मक्खी अपनी ही आत्मा हो। मक्खी का उडना

न उडना गौण है, यहाँ मुद्दे की बात यह है कि उडाते समय हम कितने सजग है।

साक्षीभाव कैसे आत्मसात् किया जाये ? प्रश्न महत्वपूर्ण है। वास्तव मे साक्षित्व ध्यान की आत्मा है। साक्षीभाव खोया यानि ध्यान से चूक गये, मन की गतिविधियाँ हम पर हावी हो गयी। जैसे, उपवन मे कोयल कुहु-कुहु कर रही है, हम सुन रहे है। इनमे दो बाते है एक बोल रही है, एक सुन रहा है। ऐसा लगता है इस कृत्य मे दो तत्व सक्रिय है। लेकिन इन दोनो के बीच एक और तथ्य है, जिसे हम पहचान नही पाते, वह है साक्षित्व।

हम क्या देख रहे है, यह गौण है। हम वृक्ष को भी देख रहे है, नदी को भी देख रहे है और आकाश को भी देख रहे है। इन सबके साथ देखना यह है कि हम किन नजरो से देख रहे है। हम साक्षीभाव से फिसल तो नही गये है। अगर हम नही फिसलते है, तो परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे दृष्टाभाव सघन हो जाएगा, थिर. अकप धीरे-धीरे रूपान्तरण होगा वे सब वस्तुएँ विलीन हो जाएँगी। विकास द्वार उद्घाटित होगे। चेतना आत्म-लीन हो जाएगी, दृष्टा ही दृश्य और ज्ञाता ही ज्ञेय हो जाएगा।

हम भोजन करते है। भोजन को कभी पचाना नही होता अपने आप पचता है, जैसे अपने आप, सूर्य सुबह उदित होता है और साझ ढलते डूब जाता है, ऐसे ही भोजन की प्रक्रिया है, अगर शरीर सही सलामत है, तो सुबह का भोजन शाम को और शाम का भोजन सुबह पच जायेगा। जैसे यह प्रक्रिया अपने आप सचालित होती है, ऐसी ही विचार और ध्यान की प्रक्रिया है। विचारो के प्रति मूर्च्छा न होना, यह ध्यान का भोजन है और पचना अपने आप होता है। पचना यानि भोजन का रक्त बनना, ध्यान की गहराई मे उतरना, जैसे भोजन करके पाचन-क्रिया शरीर पर छोड दी जाती है वैसे ही ध्यान करके समाधि की क्रिया, चैतन्य-शक्ति के हाथ छोड दी जानी चाहिये।

यद्यपि मनुष्य स्वय भोजन नही पचाता, शरीर पचाता है, पर वह उसकी पाचन प्रक्रिया मे बाधा अवश्य डाल देता है। ध्यान के सम्बन्ध मे भी यही सत्य है आप ध्यान मे गहरे नही उतर सकते, अगर उतरने की घडी भी आ जाये तो बाधा डाल देते है। विचारो के प्रति सूक्ष्मतम चुनाव और झुकाव यही ध्यान की बाधा है।

विचारो से मुक्ति का उपाय क्या है ? महावीर इसके लिए कहते है, साक्षी-भाव । महावीर के ध्यान-दर्शन का सार है यह । जब तक साक्षी भाव नही आयेगा, तब तक विचारो से मुक्ति सम्भव नही है और बिना विचार-मुक्ति के ध्यान मे प्रवेश ही कैसे होगा ? साधारणत प्रत्येक मनुष्य विचार की गति के साथ गतिमय होता है । विचारो से पैदा होने वाली अशान्ति का अनुभव उसे इसलिए नही हो पाता क्योकि गति पर रोकथाम नही लगायी जाती । जब व्यक्ति रुककर, दौड को थामकर, विचारो को देखता है तभी व्यर्थ की भाग-दौड का पता चलता है । जो स्वय विचारो की भाग-दौड मे शामिल है, भला उसे कैसे ज्ञान हो पायेगा, भाग-दौड की व्यर्थता का ?

विचारो की प्रक्रिया के प्रति आप मात्र दर्शक का भाव रखे । साक्षी का भाव रखे, सिवा देखने के और कोई सम्बन्ध ही नही है विचारो से। जब विचारो के बादल मन के आकाश को घेरे या उसमे गति करे, तो उनसे स्पष्टत पूछा जाये कि तुम कौन हो और तुम्हारा अस्तित्व क्या है ? क्या तुम मेरे हो ? स्पष्टत उत्तर मिलेगा, हम तुम्हारे अतिथि है, तुम्हारे नही है ।

विचारो को साक्षी भाव से देखने से क्रमश उनसे सम्बन्ध टूटेगा। जब वासना उठे या विचार उठे, तब ध्यान इस बात का रखे कि वासना उठ रही है या विचार उठ रहे है । क्रमश इस प्रकार आप पायेगे कि वासना विगलित हो रही है और विचार भी । साक्षी-भाव मे, इस निर्विचार समाधि मे, विचार अपने आप विलीन हो जायेगे और विचार-शक्ति का उद्‌भव होगा । इसी विचार शक्ति का नाम, प्रज्ञा है।

महावीर ने साक्षी-भाव को, जीवन मे पल-पल घटित करने की प्रेरणा दी । इसी को ध्यान और त्याग कहा । इसीलिए महावीर ने साधना का श्री गणेश सम्यक् दर्शन से किया । अगर दर्शन-शुद्धि है तो जीवन-शुद्धि है, बिना दर्शन के न ज्ञान होता है, न चारित्र होता है, न तप होता है। इसलिए महावीर ने सुनने और पढने पर ज्यादा जोर नही दिया, उन्होने देखने पर जोर दिया । चितन से अधिक दर्शन को बल दिया । विचार नही दर्शन । जैसे-जैसे दर्शन शुद्धि होती है वैसे-वैसे विचार क्षीण होते जाते है । जब व्यक्ति साक्षी मे जीता है तो स्वप्न स्वय विलीन हो जाते है ।

दीप जलेगे, बुझा करेगे, तारो मे टिमटिम होगी ।

ा की जितनी समस्याये दिखाई
ातेध्वनियाँ है। अगर एक-एक
ा जाओगे। किस-किस प्रतिध्वनि
से सघर्ष व्यर्थ है। सघर्ष करो
ा आदि स्रोत है। शाखाओ को
काटेगे चार शाखाये नई पैदा हो
ौर अधिक आते अगर शाखाओ
ा, अगर काटना ही है तो जड को
सारी शाखाएँ अपने आप विदा हो

- ध्यान से। मन है समस्या, इसका
समाधान नही है, समाधान है ध्यान
। ध्यान है और ध्यान की अनुपस्थिति

परा भी गहरे तक गयी है। इनकी
दोनो की ध्यान परम्परा का सम्मिश्रण
है। ध्यान परम्परा ही, जापान और
इस परम्परा का मूल उद्देश्य, व्यक्ति
य करना है। इस अवस्था मे व्यक्ति
लेता है। एकत्व और सार्विकता का
आधार है।

ाध्यम से, लोकोत्तर प्रज्ञा को अत्यन्त
भवो के माध्यम से सार्थक किया। वहाँ
ई प्रतीक स्वीकार नही है, चाहे वह
मे प्रवेश के लिए परमात्मा का प्रतीक
ि म्भीर भोगा जसरेक तो यहाँ तक
ेल जाये तो उन्हे मार दो।
ार्य है।

ान सूत्र, सभी का
के आश्चर्यजनक
ा जा सकता।

आवश्यकता नही होती । वहॉ कसम नही, कोशिश होती है । दुनिया मे कोशिशे कामयाब हो जाती है और वादे टूट जाते है ।

होश पर्याप्त है । सब कसमे होश मे पूरी हो जाती है । अगर फिर कल वासना जगे, तो होश को साधे, आज साधा था, कल फिर साधे। धीरे-धीरे होश को बढाये, वासना अपने आप विसर्जित हो जायेगी । वासना बेहोशी मे जगती है, होश मे कभी वासना नही जगती ।

ध्यान मे न केवल प्रवेश करे, अपितु तल-स्पर्श भी करे । ऐसा करने मे, साक्षी-भाव साथ निभाएगा ।

शुभ या अशुभ मे चुनाव न करे, निन्दा या स्तुति दोनो से बचे । जो ध्यान मे जीता है, उसके लिये न पाप अच्छा होता है, न पुण्य । उसका ध्येय तो कर्म-मुक्ति का होता है । दुनिया मे कोई भी विचार अच्छा या बुरा नही होता । विचार सिर्फ विचार है । अगर अच्छे-बुरे का सूक्ष्मतम चुनाव भी प्रारम्भ कर दिया, तो यह चुनाव भी, हमारे लिये ध्यान मे बाधक बन सकता है । जैसे तराजू मे सही तौल वह माना जाता है, जहॉ दोनो पलडे समान हो, कॉटा स्थिर हो, वैसे ही ध्यान मे भी, तराजू के पलडे—शुभ और अशुभ का सन्तुलन आवश्यक है । ध्यान का कॉटा स्थिर होते ही सब तिरोहित हो जायेगे। शुभ-अशुभ, निंदा-प्रशसा, अच्छा-बुरा, पुण्य-पाप सब समाप्त हो जायेगे।

अशान्ति का मूल मन है, जो आत्मा का निजी नही आरोपित अग है । जहॉ मन वहॉ अशान्ति है । इसलिए शान्ति की दिशा मे मात्र विचार से, अध्ययन, मनन और चितन से कुछ भी नही होगा क्योकि ये सब भी मन की ही प्रक्रियाये है। यहॉ अशान्ति को थोडी देर के लिये विराम जरूर दिया जा सकता है, अशान्ति का विस्मरण किया जा सकता है लेकिन यह सब कुछ विस्मरण की मादकता है । शान्ति, मन को खोने मे है, पाने मे नही । इसलिये महावीर, विचार एव सभी क्रियाओ के प्रति साक्षी-भाव पैदा करना चाहते है । पल-पल साक्षी होकर जीओ, जो भी करो साक्षी से करो, जैसे कृत्य कोई और कर रहा है हम मात्र गवाह है । धीरे-धीरे आप पायेगे, भोजन न मिलने के कारण मन निर्मल होता जा रहा है । कर्ता भाव मन का भोजन है, अहकार उसका ईधन है । जिस दिन ईधन समाप्त हो जायेगा उसी दिन मन तिरोहित हो जायेगा । मन की सब समस्याये तिरोहित हो जायेगी ।

समस्या ससार की नही, हमारे मन की है, मन से है । 'माइण्ड इज

दी प्राब्लम', मन ही समस्या है। दुनिया की जितनी समस्याये दिखाई दे रही है, ये सब की सब मन की प्रतिध्वनियाॅ है। अगर एक-एक समस्या से लडने लग गये तो पराजित हो जाओगे। किस-किस प्रतिध्वनि से सघर्ष किया जायेगा। प्रतिध्वनियो से सघर्ष व्यर्थ है। सघर्ष करो उस मन से, जो सब प्रतिध्वनियो का आदि स्रोत है। शाखाओ को काटने से क्या होगा ? एक शाखा काटेगे चार शाखाये नई पैदा हो जायेगी, 'शाखाओ के काँट-छॉट से और अधिक आते अगर' शाखाओ को काटने से वृक्ष और अधिक बढेगा, अगर काटना ही है तो जड को काटो, अगर जड काट दी गई तो सारी शाखाएॅ अपने आप विदा हो जायेगी।

मन जड है। इस जड को काटे ध्यान से। मन है समस्या, इसका समाधान करे ध्यान से। मन मे समाधान नही है, समाधान है ध्यान मे। मन की अनुपस्थिति का नाम ही ध्यान है और ध्यान की अनुपस्थिति ही मन है।

ध्यान के सम्बन्ध मे झेन परम्परा भी गहरे तक गयी है। इनकी ध्यान पद्धति, मे महावीर और बुद्ध दोनो की ध्यान परम्परा का सम्मिश्रण है। झेन का मूल शब्द भी ध्यान है। ध्यान परम्परा ही, जापान और चीन मे झेन परम्परा हो गयी। इस परम्परा का मूल उद्देश्य, व्यक्ति को ध्यान के माध्यम से समाधिस्थ करना है। इस अवस्था मे व्यक्ति साधारण यथार्थ को भी पार कर लेता है। एकत्व और सार्विकता का द्वद्वात्मक तर्क ही इस अवस्था का आधार है।

झेन परम्परा ने ध्यान के माध्यम से, लोकोत्तर प्रज्ञा को अत्यन्त साधारण, पर आश्चर्यजनक अनुभवो के माध्यम से सार्थक किया। वहाँ ध्यान के अन्तिम चरण मे कोई प्रतीक स्वीकार नही है, चाहे वह परमात्मा भी क्यो न हो। शून्य मे प्रवेश के लिए परमात्मा का प्रतीक भी त्याज्य माना गया है। जापानी फकीर भोगा जसरेक तो यहॉ तक कहते थे कि शून्य के मार्ग मे यदि बुद्ध भी मिल जाये तो उन्हे मार दो। क्योकि ज्ञान के लिए प्रतीको से परे जाना अनिवार्य है।

चाहे महावीर की गाथाए हो या पतजलि के ध्यान सूत्र, सभी का लक्ष्य चेतना के रहस्य को उजागर करना है। चेतना के आश्चर्यजनक गुण है। इसके बारे मे जब चाहे तब चिन्तन नही किया जा सकता।

आवश्यकता नही होती । वहॉ कसम नही, कोशिश होती है । दुनिया मे कोशिशे कामयाब हो जाती है और वादे टूट जाते है ।

होश पर्याप्त है । सब कसमे होश मे पूरी हो जाती है । अगर फिर कल वासना जगे, तो होश को साधे, आज साधा था, कल फिर साधे। धीरे-धीरे होश को बढाये, वासना अपने आप विसर्जित हो जायेगी । वासना बेहोशी मे जगती है, होश मे कभी वासना नही जगती ।

ध्यान मे न केवल प्रवेश करे, अपितु तल-स्पर्श भी करे । ऐसा करने मे, साक्षी-भाव साथ निभाएगा ।

शुभ या अशुभ मे चुनाव न करे, निन्दा या स्तुति दोनो से बचे । जो ध्यान मे जीता है, उसके लिये न पाप अच्छा होता है, न पुण्य । उसका ध्येय तो कर्म-मुक्ति का होता है । दुनिया मे कोई भी विचार अच्छा या बुरा नही होता । विचार सिर्फ विचार है । अगर अच्छे-बुरे का सूक्ष्मतम चुनाव भी प्रारम्भ कर दिया, तो यह चुनाव भी, हमारे लिये ध्यान मे बाधक बन सकता है । जैसे तराजू मे सही तौल वह माना जाता है, जहॉ दोनो पलडे समान हो, कॉटा स्थिर हो, वैसे ही ध्यान मे भी, तराजू के पलडे—शुभ और अशुभ का सन्तुलन आवश्यक है । ध्यान का कॉटा स्थिर होते ही सब तिरोहित हो जायेगे। शुभ-अशुभ, निंदा-प्रशसा, अच्छा-बुरा, पुण्य-पाप सब समाप्त हो जायेगे।

अशान्ति का मूल मन है, जो आत्मा का निजी नही आरोपित अग है । जहॉ मन वहॉ अशान्ति है । इसलिए शान्ति की दिशा मे मात्र विचार से, अध्ययन, मनन और चितन से कुछ भी नही होगा क्योकि ये सब भी मन की ही प्रक्रियाये है। यहॉ अशान्ति को थोडी देर के लिये विराम जरूर दिया जा सकता है, अशान्ति का विस्मरण किया जा सकता है लेकिन यह सब कुछ विस्मरण की मादकता है । शान्ति, मन को खोने मे है, पाने मे नही । इसलिये महावीर, विचार एव सभी क्रियाओ के प्रति साक्षी-भाव पैदा करना चाहते है । पल-पल साक्षी होकर जीओ, जो भी करो साक्षी से करो, जैसे कृत्य कोई और कर रहा है हम मात्र गवाह है । धीरे-धीरे आप पायेगे, भोजन न मिलने के कारण मन निर्मल होता जा रहा है । कर्ता भाव मन का भोजन है, अहकार उसका ईधन है । जिस दिन ईधन समाप्त हो जायेगा उसी दिन मन तिरोहित हो जायेगा । मन की सब समस्याये तिरोहित हो जायेगी ।

समस्या ससार की नही, हमारे मन की है, मन से है । 'माइण्ड इज

चाहे सक्रिय ध्यान हो, कुण्डलिनी, नटराज, नादब्रह्म या विपश्यना—चाहे जो ध्यान हो, आखिर सभी ध्यान मनोमुक्ति बनाम कर्म-मुक्ति के लिये ही है। महावीर ने भी चित्त की चचलताओ पर काफी चर्चा की थी और ठेठ तल तक गये। बारह वर्षो तक, जो साधक ध्यान और समाधि को समर्पित रहा हो, भला उसके कर्म ईधन क्यो न जलेगे। जब महावीर ध्यान की परम अवस्था मे पहुँचे उसी क्षण, अपरिमित कर्म ईधन, क्षण भर मे भस्म हो गया। उन्होने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया, जिसे हम केवल ज्ञान कहते है।

केवल ज्ञान का अर्थ मात्र उस ज्ञान से मत जोडना, जो अतीत और भविष्य को जानता है। केवल ज्ञान का अर्थ है, जो वर्तमान को जानता है, वर्तमान की, अनुपश्यी है। जो केवल एक को जानता है, अपने आप को जानता है। इसलिये केवल ज्ञानी का अर्थ हुआ, जिसने अपने आप की खोज कर ली है। जगत का ज्ञाता तो हर कोई हो सकता है, लेकिन आत्मज्ञ केवल ज्ञानी ही होता है। सर्वज्ञ वह नही जो सबको जानता है, सर्वज्ञ वह है जो स्व को जानता है, अपने आपको जानता है। ऐसे लोगो के लिये ही तो महावीर कहा करते थे, 'जे एग जाणई, से सव्व जाणई।'

जो एक को जानता है, वह सबको जानता है। जिसने एक को, अपने आपको भलीभाति नही पहचाना, वह दुनिया की पहचान कैसे कर पायेगा। महावीर ध्यान के माध्यम से, उस एक की पहचान कराना चाहते है। बिना आत्म तत्त्व की पहचान के सारी ध्यान-साधनाये ऐसी है जैसे बिना एक के सौ शून्यो का प्रयोग। इस साधना के मार्ग मे अगर आत्मा की कूची साथ लेकर न चढे, तो ठेठ ऊपर पहुँच कर भी वापस लौटना पडेगा क्योकि वहाँ ताला बन्द मिलेगा। अगर चाबी भूल आये तो वापस लौटना पडेगा।

मैंने सुना है, दो दोस्त भारत से अमेरिका गये। किसी सत्तर मजिली होटल मे ठहरे थे। साठवी मजिल मे उन्हे रूम मिला। रात को नाइट-शो देखने चले गये। साढे बारह बजे वापिस लौटे। लिफ्ट मैन से ज्ञात हुआ कि किसी कारणवश लिफ्ट खराब हो गई है। अपने रूम तक जाने के लिये सिवाय सीढिया चढ़ने के कोई उपाय न था। उन दोनो ने सोचा, चलो, पैदल ही चढते है।

रवानगी से पहले उन्होने अपना कोट उतार कर वाच मैन को दे

ध्यान आत्मचिन्तन का साधन है । साधारणत हम चेतना को शरीर की इच्छाओ से जोडते है, पर यदि ऐसा होता तो हम मात्र यत्र ही होते।

चीन और जापान मे ध्यान परम्परा के सस्थापक, बोधिधर्म माने जाते है । भारतीय ध्यान परपरा को सर्वप्रथम बोधिधर्म ही वहॉ लेकर गये थे । कहते है एक बार सम्राट वू ने बोधिधर्म से पूछा, 'पवित्र परमसत्य क्या है ? बोधिधर्म ने कहा, 'यह शून्य है, पवित्रता का कोई अर्थ नही है ।' तो सम्राट ने पूछा, 'फिर सामने यह कौन खडा है ?' बोधिधर्म ने कहा, 'मै नही जानता।' जैसे मन्त्र परम्परा मे बीज, मन्त्र या अक्षर होते है, वैसे ही बोधिधर्म का शून्य भी, बीज शब्द है जिसका अर्थ है—परमचेतना। ध्यान इसी परम चेतना से साक्षात्कार करने का साधन है ।

महावीर ने कहा, 'जैसे चिर सचित ईधन को वायु से उद्दीप्त आग तत्काल जला डालती है ।' यह उपमा ध्यान की शक्ति को उजागर करने के लिये है । चाहे लाखो लीटर पेट्रोल हो लेकिन अगर अग्नि का सस्पर्श हो गया हो, तो वह अपना अस्तित्व बचा नही पायेगा । जलना उसकी अनिवार्यता हो जायेगी । चाहे जितना ईधन इकट्ठा किया हो, अग्नि उसे भी समाप्त कर देगी क्योकि अग्नि का काम ही ईधन को जलाना है । जैसे काल के पजो मे चाहे पूरा ससार भी फस जाये, तो भी बच नही सकता, वैसे ही अग्नि के सस्पर्श से ईधन नही बच सकता । महावीर साधको के लिये, ऐसी ही ध्यान की अग्नि जलना चाहते है । ध्यान वह द्वार है, जो स्वय का स्वय से ही परिचय करवाता है । चाहे ज्ञान का यात्री हो, चाहे प्रेम का, अन्तत तो ध्यान का सहारा ही लेना पडेगा । ये ससार के जितने भी मार्ग है, सब ध्यान के ही विभिन्न रूप है । ध्यान का अर्थ हुआ एकाग्रता । चाहे प्रार्थना हो, पूजा हो, उपासना हो, भक्ति हो या सन्यास हो, आखिर एकाग्रता की आवश्यकता तो होगी ही । जब तक चित्त मौन न होगा, निर्विचार न होगा तब तक पूजा, प्रार्थना और उपासना केवल शरीर और मन तक सीमित रह जायेगी, चैतन्य शक्ति से उनका सम्बन्ध जुड नही पायेगा । शक्ति, समय और सकल्प तीनो ही समर्पित कर दे ध्यान को ।

महावीर ने कहा, 'ध्यान रूपी अग्नि, अपरिमित कर्म ईधन को क्षण भर मे भस्म कर देती है ।' बडी गहरी बात कही है महावीर ने , कर्म के ईधन को जलाने मे, ध्यान सर्वाधिक कारगर सिद्ध हो सकता है ।

चाहे सक्रिय ध्यान हो, कुण्डलिनी, नटराज, नादब्रह्म या विपश्यना—चाहे जो ध्यान हो, आखिर सभी ध्यान मनोमुक्ति बनाम कर्म-मुक्ति के लिये ही है। महावीर ने भी चित्त की चचलताओ पर काफी चर्चा की थी और ठेठ तल तक गये। बारह वर्षो तक, जो साधक ध्यान और समाधि को समर्पित रहा हो, भला उसके कर्म ईधन क्यो न जलेगे। जब महावीर ध्यान की परम अवस्था मे पहुँचे उसी क्षण, अपरिमित कर्म ईधन, क्षण भर मे भस्म हो गया। उन्होने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया, जिसे हम केवल ज्ञान कहते है।

केवल ज्ञान का अर्थ मात्र उस ज्ञान से मत जोडना, जो अतीत और भविष्य को जानता है। केवल ज्ञान का अर्थ है, जो वर्तमान को जानता है, वर्तमान की, अनुपश्यी है। जो केवल एक को जानता है, अपने आप को जानता है। इसलिये केवल ज्ञानी का अर्थ हुआ, जिसने अपने आप की खोज कर ली है। जगत का ज्ञाता तो हर कोई हो सकता है, लेकिन आत्मज्ञ केवल ज्ञानी ही होता है। सर्वज्ञ वह नही जो सबको जानता है, सर्वज्ञ वह है जो स्व को जानता है, अपने आपको जानता है। ऐसे लोगो के लिये ही तो महावीर कहा करते थे, 'जे एग जाणई, से सव्व जाणई।'

जो एक को जानता है, वह सबको जानता है। जिसने एक को, अपने आपको भलीभाति नही पहचाना, वह दुनिया की पहचान कैसे कर पायेगा। महावीर ध्यान के माध्यम से, उस एक की पहचान कराना चाहते है। बिना आत्म तत्त्व की पहचान के सारी ध्यान-साधनाये ऐसी हैं जैसे बिना एक के सौ शून्यो का प्रयोग। इस साधना के मार्ग मे अगर आत्मा की कूची साथ लेकर न चढे, तो ठेठ ऊपर पहुँच कर भी वापस लौटना पडेगा क्योकि वहाँ ताला बन्द मिलेगा। अगर चाबी भूल आये तो वापस लौटना पडेगा।

मैंने सुना है, दो दोस्त भारत से अमेरिका गये। किसी सत्तर मजिली होटल मे ठहरे थे। साठवी मजिल मे उन्हे रूम मिला। रात को नाइट-शो देखने चले गये। साढे बारह बजे वापिस लौटे। लिफ्ट मैन से ज्ञात हुआ कि किसी कारणवश लिफ्ट खराब हो गई है। अपने रूम तक जाने के लिये सिवाय सीढ़िया चढ़ने के कोई उपाय न था। उन दोनो ने सोचा, चलो, पैदल ही चढते है।

रवानगी से पहले उन्होने अपना कोट उतार कर वाच मैन को दे

दिया, कहा 'यह भार हम साथ ढोना नही चाहते है, तुम अपने पास रखो, सुबह लिफ्ट सही होगी तब हमे पहुॅचा देना।'

दोनो ने चढाई प्रारम्भ कर दी, करीब चालीस तल्ले पर पहुॅच पाये होगे कि रात के डेढ बज गये। चढते-चढते दोनो का सास भर आया। फिर भी साहस कर चढने लगे, सोचा अब तो बीस मजिल ही शेष है। चढते-चढते पचास मजिल भी पार कर गये। कुछ समय बाद जब वे पचपनवी मजिल पर थे,एक ने कहा, 'दोस्त, रूम की चाबी लाये हो?'

दूसरे ने कहा, 'चाबी, ओह! चाबी तो कोट की जेब मे ही रह गई।' पहले ने कहा, 'सोचो दोस्त,हम पहली मजिल पर है या पचपनवी पर।'

महावीर हाथ मे चाबी थमाना चाह रहे है। आत्मा की चाबी और चाबी को सभाल कर चलने का साधन ध्यान है अन्यथा आत्म-पहचान के अभाव मे की जाने वाली साधना, मजिल हासिल नही करा सकती। सारे जहॉ मे भटक कर व्यक्ति वापिस वही पहुॅचता है, जहॉ से उसने यात्रा प्रारम्भ की है। कोल्हू के बैल की तरह है उसकी यात्रा, जो सुबह से साझ तक चलता रहता है वर्तुलाकार, पर साझ को वही पहुॅचता है जहा से यात्रा प्रारम्भ की।

महावीर कर्म के ईधन को, ध्यान रूपी अग्नि से जलाना चाह रहे है। कर्म रूपी ईधन, इसे समझे। आत्मा वैसे तो पूर्णतया स्वतत्र है, सब गतिविधियो का सचालन करती है, पर फिर भी बधी है कर्मो से। वे कर्म चाहे शुभ हो या अशुभ। खास बात यह नही है कि आत्मा शुभ कर्मो से बधी है या अशुभ से, पाप से बधी है या पुण्य से। यहॉ चर्चा पाप और पुण्य की नही, शुभ और अशुभ की नही, बधन की है। ध्यान के मार्ग मे महावीर केवल पाप से ही मुक्ति नही दिलाना चाहते, अपितु पुण्यातीत भी बनाना चाहते है। बधन आखिर बधन है, चाहे लौह-शृखला का हो या स्वर्ण-शृखला का,

> शक्कर भरी हो चाहे, धूल भरी हो।
> सोने की साकल हो या लोहा जडी हो।
> शुभाशुभ दोनो त्याग शुद्ध बन जाइये।
> अपने को पहले बिल्कुल खाली बनाइये॥

महावीर ने ईधन, कर्म का कहा, पाप का नही कहा। इसे गहराई से समझे। हम जितने धार्मिक कृत्य करते है, सब पुण्य के लिये करते

है, स्वर्ग के लिये करते है। महावीर पुण्य को भी एक कर्म मानते है और स्वर्ग को भी ससार मानते है। इसलिये वे कहते है, कर्म रूपी ईंधन, फिर चाहे वह शुभ हो या अशुभ। जैसे समाधि मे प्रवेश करने के लिये, शुभ और अशुभ दोनो विचार त्याज्य है, वैसे ही निर्वाण की ज्योति जलाने के लिये, पाप और पुण्य दोनो से मुक्ति आवश्यक है और इस कर्म ईंधन को जलाने के लिये, महावीर ध्यान की अग्नि का प्रयोग कर रहे है। ध्यान सधुक्कडी मस्ती है। एक ऐसी मस्ती जिससे दूर हो जाते है तनाव, तृष्णा, आकाक्षा और आसक्तियॉ।

अवसर हाथ लगा है, ध्यान मे प्रवेश करने के लिये। कल से ही धीरे-धीरे ध्यान से जीना सीखे। जिस वैभव को ढूढने के लिये बाहर भटक रहे हो, वह वैभव तुम्हारे भीतर है। पहचानो अपने आत्म वैभव को, 'ओ रम्भाती नदियो, बेसुध कहॉ भागी जा रही हो, बशीरव तुम्हारे भीतर है।' कस्तूरी कुण्डल बसै, तुम्हारे अन्तर मे है वशी की आवाज, कुण्डली मे है कस्तूरी और भीतर है अनन्त वैभव। अगर उस आत्म-वैभव को उजागर कर लिया, तो सच कहता हूॅ उस वैभव के सामने, सिकन्दर का सिर भी शर्म से झुक जायेगा।

अभी भी समय है, अपनी शक्ति का पुरजोर उपयोग करो। डूबो ध्यान मे, उतरो समाधि मे। खो जाओ, रम जाओ। शुरू कर दो बजाना अपनी अन्तर वीणा को, ध्यान की अगुलियो से, अन्यथा वीणा बेकार चली जाएगी। सगीत मात्र वीणा से नही, अगुलियो की कृपा से प्रगट होता है। अगर ऐसा न किया, अपने तारो को न छेडा तो वीणा मृत रह जाएगी, सगीत सोया/दबा रह जाएगा। जैसे वृक्ष मे बीज दबा रह गया, जैसे आवाज कठ मे अटकी रह गयी, जैसे प्रेम हृदय मे बद रह गया, जैसे कली खिलने को थी, खिल न पायी। कली खिल न पायी, सुगध बिखर न पायी।

□

अनासक्ति : संसार में संन्यास

"परिवार-नियोजन के आधुनिक उपायो से जनसख्या-वृद्धि तो रुक जायेगी, पर वासना, कामेच्छा-भोगेच्छा भरपूर फैल जायेगी। मात्र परिवार-नियोजन ही नही, देश को सुखी-समृद्ध करने के लिए, इच्छा-नियोजन भी होना आवश्यक है। सदाचार के साये मे जीने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी कामना, वासना और तृष्णा पर भी लगाम लगाये।"

भगवान महावीर ने आसक्ति को ही लोक कहा है। आचाराग के पहले अध्याय मे कहा है, 'इच्चत्थ गड्ढिए लोए' आसक्ति ही लोक है। जो आसक्त है, वह ससारी है। जो अनासक्त है, वह परीत ससारी है। आसक्ति का दायरा जितना विस्तृत होगा, ससार और बन्धन उतना ही प्रगाढ कहलाएगा।

आसक्ति का अर्थ है- मूर्च्छा। इसे हम सम्मोहन भी कह सकते है। मेरा भाई, मेरी पत्नी, मेरी माँ, मेरी दुकान, मेरा घर–'यह मेरा' ही आसक्ति है। परिजनो के बीच रहना-जीना, कपडे पहनना या भोजन करना आसक्ति की मुहर लगाना नही है। वरन् इन सबके साथ 'मेरे' को जोडना ही आसक्ति है। अनासक्त वह है, जो ससार मे रहकर भी कमल की पखुडियो की तरह निर्लिप्त जीता है।

जीवन मे आसक्ति का दायरा, आयु क्षीण होने के साथ-साथ सकुचित होता हो, ऐसी बात नही है। वास्तव मे जीवन का कलश जैसे-जैसे रीता होता है, आसक्ति और गहरी होती जाती है। व्यक्ति ससार मे प्रवेश तो आम जीवन जीने के लिए ही करता है, लेकिन धीरे-धीरे ऐसे चक्रव्यूह मे फस जाता है, जिसमे प्रवेश करने के बाद बाहर निकलना दुष्कर हो जाता है। जाल बनाती है मकडी औरो को फसाने के लिए, लेकिन उन बारीक और चिपचिपे रेशो मे वह इतनी उलझ जाती है कि मकडी का जाल ही मकडी के लिए व्यूह बन जाता है।

मकडी के शरीर मे एक विशेष ग्रन्थि होती है, जिससे 'एमिनो एसिड' स्रावित होता है। उसीसे मकडी धागा बुनती है। जाला इसका शिकार को फसाने का साधन है। इसके जाले की विशेषता यह होती है कि जीव इसमे से निकलने के लिए जितना छटपटाता है, उतना ही उलझता जाता है। किसी को अपने शिकजो मे जकडने के लिए आतुर मकडी, किसी और को जकड पाये या न जकड पाये, उसकी अकड तब ढीली पड जाती है जब वह स्वय ही अपने जाल मे उलझ जाती है। मकडी की इस जाल से मुक्ति नामुमकिन तो नही, लेकिन टेढ़ी अवश्य

है। जब जाल बनाया जाता है तब जीवन का एक लम्बा भाग रेशे से रेशे को जोडने मे बीत जाता है। भूख-प्यास की चिन्ता नही, सर्दी-गर्मी की परवाह नही, धुन की धनी मकडी हॅसते-हॅसते जाल बनाती है और उस जाल मे फॅसकर रोते-रोते जिन्दगी पूरी करती है।

मकडी जाल बुनती है।
तुम भी जाला बुनते हो।
जाले इसलिए है,
कि वे बुने जाते है।
मकडी के द्वारा
तुम्हारे, मेरे
या हम सब के द्वारा।
मकडी, हम सब, इसलिए है
कि अपने-अपने जालो मे
या एक-दूसरे के बुने
जालो मे फॅसे है।
हम सब जाल बुनते है
तब चुप-चुप रहते है
लेकिन जब उनमे फॅसते है
तब बहुत शोर करते है।

यहॉ ससार मे जिस-जिसने जाल बुना है, अवश्य फसा है। चना न खाने वाला, न खाकर पछताया है या नही पछताया, पर जिसने खाया है वह तो पछता ही रहा है। मनुष्य की आसक्ति का मकड-जाल मकडी से भी बदतर है। मकडी केवल एक जाल बुनती, बनाती है लेकिन मनुष्य न जाने कितने मकड-जाल बुनता-बनाता है। जड से जड को सजाया जाता है और चेतना प्रफुल्लित होती है। पुद्गल से पुद्गल को सजाने-सवारने मे चेतना की आसक्ति/मूर्च्छा, इसी का नाम मिथ्यात्व है। यह आत्मा की वह दशा है जब चैतन्य से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, सारा सम्बन्ध जड के साथ, पुद्गल के साथ, भौतिक पदार्थो के साथ ही हो जाता है। इस गिला भरी जिदगी मे व्यक्ति आवश्यकताओ की

पूर्ति तो जैसे-तैसे कर लेता है, लेकिन इच्छाये । इच्छाये तो इतनी लम्बी होती है कि उसका छोर पकडना तो दूर व्यक्ति उन्हे देख भी नही पाता।

मनुष्य इच्छाओ की पूर्ति के लिए मसूबे बाधता है, ख्वाब देखता है, सपनो मे खोता है, पर अन्त मे हाथ मलने के सिवा इस मामले मे कुछ नही कर पाता। हैसियत होती है झोपडी की और ख्वाब देखता है महलो के। सोये-सोये भले ही सपनो मे महल की यात्रा कर आये या रनिवास मे रात बिता आये, पर आँख खुलने पर तो झोपडी ही नसीब मे रहेगी। अपनी इच्छाओ के पॉव वही तक पसारना ठीक है, जहाँ तक गूदडी की सीमा है। अन्यथा इच्छाये मात्र सपनो मे पूर्ण हो पाएगी, जीवन का यर्थाथ कुछ और ही होगा-

नाम मे शहीदो के डिग्रियाँ नही होती
बदनसीब हाथो मे चूडिया नही होती।
सबको उस रजिस्टर पर हाजरी लगानी है
मौत वाले दफ्तर मे छुट्टिया नही होती।
ढूढते हो क्यो ममता खाडकू की ऑखो मे
सिगरेटो के पैकिट मे बीडिया नही होती।
जो तलाश मे खुद की चल रहे अकेले है
यार उन के पावो मे जूतिया नही होती।
मत करो बुढ़ापे मे इश्क की तमन्नाए
क्योकि फ्यूज बल्बो मे बिजलिया नही होती।
इतनी उॅची मत छोडो गिर पडोगे धरती पर
क्योकि आसमानो मे सीढ़िया नही होती।
कर्म के मुताबिक ही फल मिलेगा इसा को।
आमवाले पेडो पर भिडिया नही होती।

यह हमारे जीवन का कटु सत्य है। हमारी इच्छाए बेलगाम है। दौड रही है वे मृग की तरह, हवाओ मे दौड लगाकर, पर अन्त मे पस्त ही होना पडेगा।

है। जब जाल बनाया जाता है तब जीवन का एक लम्बा भाग रेशे को जोडने मे बीत जाता है। भूख-प्यास की चिन्ता नही, सर्द की परवाह नही, धुन की धनी मकडी हँसते-हँसते जाल बनाती है उस जाल मे फँसकर रोते-रोते जिन्दगी पूरी करती है।

मकडी जाल बुनती है।
तुम भी जाला बुनते हो।
जाले इसलिए है,
कि वे बुने जाते है।
मकडी के द्वारा
तुम्हारे, मेरे
या हम सब के द्वारा।
मकडी, हम सब, इसलिए है
कि अपने-अपने जालो मे
या एक-दूसरे के बुने
जालो मे फँसे है।
हम सब जाल बुनते है
तब चुप-चुप रहते है
लेकिन जब उनमे फँसते है
तब बहुत शोर करते है।

यहाँ ससार मे जिस-जिसने जाल बुना है, अवश्य फसा है। चना न खाने वाला, न खाकर पछताया है या नही पछताया, पर जिसने खाया है वह तो पछता ही रहा है। मनुष्य की आसक्ति का मकड-जाल मकडी से भी वदतर है। मकडी केवल एक जाल बुनती, बनाती है लेकिन मनुष्य न जाने कितने मकड-जाल बुनता-बनाता है। जड से जड को सजाया जाता है और चेतना प्रफुल्लित होती है। पुद्गल से पुद्गल को सजाने-सवारने मे चेतना की आसक्ति/मूर्च्छा, इसी का नाम मिथ्यात्व है। यह आत्मा की वह दशा है जब चैतन्य से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, सारा सम्बन्ध जड के साथ, पुद्गल के साथ, भौतिक पदार्थो के साथ ही हो जाता है। इस गिला भरी जिदगी मे व्यक्ति आवश्यकताओ की

पूर्ति तो जैसे-तैसे कर लेता है, लेकिन इच्छाये । इच्छाये तो इतनी लम्बी होती है कि उसका छोर पकडना तो दूर व्यक्ति उन्हे देख भी नही पाता।

मनुष्य इच्छाओ की पूर्ति के लिए मसूबे बाधता है, ख्वाब देखता है, सपनो मे खोता है, पर अन्त मे हाथ मलने के सिवा इस मामले मे कुछ नही कर पाता। हैसियत होती है झोपडी की और ख्वाब देखता है महलो के। सोये-सोये भले ही सपनो मे महल की यात्रा कर आये या रनिवास मे रात बिता आये, पर ऑख खुलने पर तो झोपडी ही नसीब मे रहेगी। अपनी इच्छाओ के पॉव वही तक पसारना ठीक है, जहॉ तक गूदडी की सीमा है। अन्यथा इच्छाये मात्र सपनो मे पूर्ण हो पाएगी, जीवन का यर्थाथ कुछ और ही होगा-

नाम मे शहीदो के डिग्रियॉ नही होती
बदनसीब हाथो मे चूडिया नही होती।
सबको उस रजिस्टर पर हाजरी लगानी है
मौत वाले दफ्तर मे छुट्टिया नही होती।
ढूढते हो क्यो ममता खाडकू की ऑखो मे
सिगरेटो के पैकिट मे बीडिया नही होती।
जो तलाश मे खुद की चल रहे अकेले है
यार उन के पावो मे जूतिया नही होती।
मत करो बुढापे मे इश्क की तमन्नाए
क्योकि फ्यूज बल्बो मे बिजलिया नही होती।
इतनी उॅची मत छोडो गिर पडोगे धरती पर
क्योकि आसमानो मे सीढिया नही होती।
कर्म के मुताबिक ही फल मिलेगा इसा को।
आमवाले पेडो पर भिडिया नही होती।

यह हमारे जीवन का कटु सत्य है। हमारी इच्छाए बेलगाम है। दौड रही है वे मृग की तरह, हवाओ मे दौड लगाकर, पर अन्त मे पस्त ही होना पडेगा।

कहाँ तक फैलायेगे हम अपनी आसक्ति, मूर्च्छा और इच्छा के दायरे को । आसाक्ति न शुभ है, न शान्त है । यह खून की तरह लाल है, मद की तरह नशीली है, बुद्धि की स्थिरता खोती है । यह सही को गलत और गलत को सही दिखाती है ।

आसक्ति और सम्मोहन के विविध रूप है । व्यक्ति की आसक्ति, मूर्च्छा और सम्मोहन सब कुछ जड के साथ होता है । वह दलदल मे पैदा होता है और दलदल मे ही उलझा रहता है । कितनी कितनी प्रकार की आसक्ति मे जीता है इसान । मकान का राग, पुत्र का राग, पत्नी-परिवार-पैसे का राग, पता नही राग के कितने रूप उसे चारो ओर से घेर लेते है ।

व्यक्ति की आसक्ति को जब-जब भी चोट लगेगी वह दु खी और व्यथित होगा । दुकान और मकान की थोडी-सी क्षति भी आसक्त मन मे भयकर बवाल खडा कर देती है । मकान गिरा इसलिए व्यक्ति नही रोता है, आखो मे आँसू इसलिए है कि उसके ममत्व को चोट लगी । अगर मकान गिरने से या आग लगने से आख मे आसू आते तो पडौसी के मकान गिरने पर क्यो नही आते ? वास्तव मे ये आसू मकान के गिरने पर नही, अपनी आसक्ति पर मार पडने के कारण आ रहे है ।

व्यक्ति को निवास के लिए चार कमरो की आवश्यकता होती है, लेकिन चाहत सात मजिल की रहती है । सयोगवशात् सात मजिला मकान भी बन जाता है, लेकिन इसी के साथ आसक्ति के मकड-जाल भी बुन जाते है । व्यक्ति की आसक्ति भी इतनी गहरी है कि मकान का एक भाग भी गिर जाये तो व्यक्ति रो पडता है, लेकिन मालिक के मरने पर कभी मकान को रोते हुए देखा है ? यहाँ चर्चा न मकान की, न मालिक की, चर्चा आसक्ति की है । जिस मकान के लिए जिन्दगी भर की कमाई राख, पानी की जा रही है, सोचो, जब श्मशान मे सोओगे, इतनी भी जगह तुम्हारे पास न होगी कि करवट भी बदल सको । जिस सोने और चाँदी को सजाने-सवारने मे जीवन की भव्यता खोई है, ये सोने-चाँदी तब तिजोरी मे धरे रह जाएगे जब मौत तुम्हे अपने आगोश मे छिपा ले जाएगी ।

शरीर माटी का है, इसे सजाया और सवारा जाता है सोने-चादी से। इसान का जीवन छोटा है, पर अरमान

छोटा-सा तू कितने बडे अरमान है तेरे ,

मिट्टी का तू सोने के सब सामान है तेरे,
मिट्टी की काया मिट्टी मे, जिस दिन समाएगी,
ना सोना काम आएगा, ना चादी आए
पर खोल ले पछी तू पिंजरा छोडकर उडजा,
माया महल के सारे बन्धन तोडकर उडजा,
धडकन मे जिस दिन मौत तेरी गुनगुनाएगी,
ना सोना काम आएगा, ना चॉदी आएगी ॥

यह गीत उस पछी के नाम है, जो पिंजरे मे कैद है और पिंजरे से ही मोह कर बैठा है। यह गीत आह्वान है पछी को पिंजरा छोडने के लिए, बधन तोडने के लिए। धडकन मे मौत गुनगुनाए उससे पहले बेहोशी को तोडे, अपने अस्तित्व को आत्मसात् करे। आज महावीर के जिस सूत्र के हम तार छेडेगे, वह इसी बेहोशी और आसक्ति को तोडने के लिए है, ससार को जगाने के लिए है। यह सदेश उसके लिए है जो दुख मे जी रहा है, दुखो को पहचान भी रहा है, लेकिन मुक्त नही हो पा रहा है। इसलिए आज का सूत्र बधन से मुक्ति का सूत्र है। सूत्र है—

नागो जहा पकजलावसन्नो, दट्ठु पल नाभिसमेइ तीरा।
एव वय कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुवयामो ॥

जैसे दलदल मे फँसा हुआ हाथी जमीन को देखते हुए भी किनारे पर नही पहुच पाता, वैसे ही काम-गुणो मे आसक्त, श्रमण-धर्म को जानते हुए भी उसका अनुसरण नही कर पाते।

महावीर का यह सूत्र जागृति का सन्देश है। यह उनके अनुभव की वाणी है। इस सूत्र से माया टूटेगी, स्वप्न टूटेगा, बेहोशी टूटेगी। 'जैसे दल-दल मे फसा हुआ हाथी जमीन को देखकर भी किनारे नही पहुच पाता।' महावीर ने जीवन की सच्चाई को उजागर करने के लिए सुन्दर उपमा दी है– दल-दल, हाथी और जमीन। महावीर ने देखा होगा कही दल-दल मे फसे हाथी को। यह एक पारम्परिक किन्तु व्यावहारिक उदाहरण है दल-दल और हाथी का। कीचड मे कमल खिलते है हाथी उनके सौन्दर्य के प्रति आकर्षित भी होता है, पर कीचड मे धसने के बाद चाहे कमल हो या हाथी मुक्ति का मार्ग हाथ लगना कठिन है।

दल-दल मे हाथी और बेहोशी मे मनुष्य, हाथी कीचड मे है और मनुष्य ससार मे है। लेकिन तट को देखते हुए भी निकलना दोनो के लिए दुष्कर-सा हो गया है। जन्म से मृत्यु तक ससार का ऐसा गुरुत्वाकर्षण चलता है कि व्यक्ति देख तो रहा है समाधि की राहो को, लेकिन ससार का गुरुत्वाकर्षण उसे अपनी ओर खीच लेता है।

महावीर इसी आसक्ति से छुटकारा दिलाना चाह रहे है। उनके अनुसार जीवन की ध्रुवता चैतन्य मे है, लेकिन व्यक्ति अध्रुव और अशाश्वत ससार मे ही अपने को रचा-पचा लेता है। शरीर माटी का, मकान माटी का, सोना-सम्पत्ति सब कुछ माटी के है, पर आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि चेतना भी माटी मे रच-बस जाती है, उसका मेरापन माटी के साथ ही जुड जाता है। यो एक अनश्वर नश्वर मे विलीन हो जाता है।

दुनिया के जितने भी दु ख है, अस्तित्व से एक भी दु ख व्यक्ति को प्राप्त नही होता है। सारे दु ख ममत्व बुद्धि से पैदा होते है। दु ख हमेशा उसी द्वार से आता है जिससे सुख आता है। व्यक्ति की आसक्ति का खूटा इतना गहरा गड जाता है कि उसका 'मै' का सबध भी जड के साथ जुड जाता है। काश। व्यक्ति 'मै' मे भी आत्मा को निहार पाता और 'मेरे' मे भी।

मकान व्यक्ति से कभी नही कहता कि तुम मेरे मालिक हो। व्यक्ति स्वय गौरव के साथ कहता है, 'मै मकान-मालिक हूँ।' क्या कभी किसी कल कारखाने ने कहा कि मेरा मालिक कौन है ? व्यक्ति सदैव अपनी मालकियत का बोर्ड लगाता है और सासारिकता मे स्वय घिर जाता है। जिस मकान को बनाने, सजाने, सवारने मे व्यक्ति अपनी सारी जिन्दगी पूरी कर देता है, वही मकान उसके लिए तब सरायखाना बन जाता है जब उसे ससार से अलविदाई मिल जाती है।

कहते है सम्राट् इब्राहीम के महल मे एक फकीर पहुचा। द्वारपाल से कहा– 'मै आज महल मे विश्राम करना चाहता हूँ।'

द्वारपाल ने कहा– 'फकीर। यह राजा का महल है, सरायखाना नही।'

फकीर सम्राट् से मिला, पर सम्राट् ने भी फकीर से यही कहा-'यह महल है, मेरा निवास-स्थान है, सरायखाना नही है। अगर चाहो तो

तुम्हारे रात रुकने की व्यवस्था हो सकती है, नगर के किसी [illegible] मे।'

फकीर के कहा—'राजन् ! जिसे तुम अपना महल समझते हो वह महल नही सरायखाना है, धर्मशाला है। मै जब [illegible] वर्ष पूर्व य[illegible] आया था, तब तुम्हारे परदादा यहाँ रह रहे थे, वे अब कहाँ गये ?

सम्राट् ने कहा, 'वे नहीं रहे।'

'तुम्हारे दादा ?'

'वे भी चले गये।'

'तुम्हारे पिता ?'

'वे भी चले गये।'

फकीर ने हँसते हुए कहा, 'सम्राट् ! इसी तरह तुम भी चले जाओगे, कभी तुम्हारा पुत्र भी चला जाएगा। कोइ आज जा रहा है, कोइ कल जाने वाला, दुनिया है धर्मशाला। जब तुम्हारे परदादा, दादा, पिता सब जिसे छोडकर चले गये, क्या तुम वहाँ शाश्वत रह पाओगे। सम्राट् ! बोलो मै इसे सरायखाना न कहूँ, तो और क्या कहूँ !'

महल तब तक महल है, जब तक हमारा उसके साथ सबध है। उस दिन ये महल, मकान, बगला सब धर्मशाला का रूप धारण कर लेगे, जिस दिन हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

ससार का अस्तित्व हमारे लिए तभी तक है, जब तक हमारा अस्तित्व है। दुकान, मकान सब यही धरे रह जाते है। पत्नी चौखट तक पहुँचा पाती है और परिजन श्मशान घाट तक साथ निभाते है, जब हँसा उड जाता है। इसलिए कीमत ससार की मत आकना, आत्मा की आकना, जड से ऊपर उठकर चेतना की आकना। सासारिक सुखो की आसक्ति कभी भी सत्य तक नही पहुँचा सकती।

आसक्ति के भी कई दायरे है। व्यक्ति का मन मात्र मकान, दुकान, पुत्र-परिवार या धन-सम्पत्ति के प्रति ही आसक्त नही होता, अपितु देव,गुरु और धर्म का भी सम्मोहन उसे घेर लेता है। मन्दिर और मस्जिद से भी राग और द्वेष के सम्बन्ध जुड जाते है। धार्मिकता मुँह के बल गिर जाती है और साम्प्रदायिकता सिरमौर हो जाती है। अपने गुरु को सुगुरु, अपने धर्म को सुधर्म, अपने देव को सुदेव और प्रत्येक

पर के साथ 'कु' का प्रयोग करना साम्प्रादायिक व्यामोह नही तो और क्या है ? अभी अयोध्या मे मन्दिर और मस्जिद को लेकर जो कुछ हुआ उसने देश भर मे इसानियत का जनाजा निकाल दिया । हिन्दू ने मुसलमान को और मुसलमान ने हिन्दू को मारा, इन दोनो की मारकाट से इस देश की मानवता पर मातम छा गया ।

मन्दिर का शिखर गिरने पर मौलाना खुश होता है और मस्जिद की मीनारे ढहने पर पडित । साम्प्रदायिक आसक्ति का परिणाम यह होता है, कि व्यक्ति सृजन का मार्ग छोडकर विध्वस का मार्ग अपना लेता है। जो अपना हित नही कर सकता, वह दूसरो का अहित कर खुश होता है। मन्दिर बनाने का सामर्थ्य नही है तो मस्जिद तोडकर ही पुण्य कमाना चाहता है । चाहे मन्दिर हो या मस्जिद, किसी को मिटाकर नव निर्माण करना बुद्धिमानी नही कही जा सकती । साम्प्रदायिक व्यामोह को गिराना ही आध्यात्मिकता है, धार्मिकता है, नैतिकता है ।

महावीर ने कहा, 'दल-दल मे फसा हाथी ।' सीधा-सा अर्थ हुआ आसक्ति मे फसा हुआ मनुष्य । यहॉ हर मनुष्य शोक-ग्रस्त है, यह बात अलग है कि शोक के कारण अलग-अलग हों, लेकिन शोक हर किसी का पिछलग्गू है । कोई इसलिए शोक कर रहा है कि उसे पिछले वर्ष पन्द्रह लाख की आय हुई थी, इस वर्ष तो पाच की हुई है । जो पाच पाया उसका हर्ष नही है लेकिन जो दस हाथ न लगा उसका शोक है।

कभी भिखारियो की जमात देखी है ? सिर्फ आपकी, अपने मकान और बगले के प्रति आसक्ति होती हो ऐसी बात नही है । भिखारी ने भी उस स्थान पर कब्जा कर रखा है, जहॉ बैठकर वह रोज भीख मागता है । वह उस स्थान पर कब्जे के लिए झगडा भी कर लेगा। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता मे तो भिखारी, अपनी भीख मागने की जगह एक-दूजे को किराये पर देते है । अभी कुछ दिन पूर्व मैने सुना, कि बम्बई के एक भिखारी ने अपने दामाद को दहेज मे वह स्थान दिया, जहॉ बैठकर वह वर्षो से भीख मागता था । बडे शहरो मे देखा होगा, भिखारी भी जिस जगह पर बैठता है, सडक के किनारे, वह उसकी हो जाती है । अगर कोई दूसरा वहॉ बैठ जाये तो झगडा शुरु हो जाता है। वैसे फुटपाथ किसी की बपौती नही हो सकता । मगर इन भिखारीयो के अपने अड्डे है । जो भिखारी जहॉ बैठकर कमाता है, वह उसकी दुकान हो जाती है ।

एक भिखारी ऐसी ही किसी दुकान मे बैठा भीख मॉग रहा था। एक व्यक्ति उधर से गुजरा और भिखारी कातर स्वर मे बोला, 'भैया! कुछ पैसे दे दो, सिनेमा देख आऊगा। वही उसके पास तख्ती लगी थी कि 'मै अधा हूँ।'

उस व्यक्ति ने भिखारी से कहा, 'तुम अधे हो फिर सिनेमा कैसे देखोगे ? '

भिखारी ने कहा, 'नही जनाब ! मै अधा नही हूँ। असल मे यह दुकान दूसरे भिखारी की है, वह आज छुट्टी पर है। मै तो लगडा हू, पर दुकान मौके की है। जब वह छुट्टी पर होता है तो मुझे बिठा देता है।'

भिखारियो की इन बातो से हमे हॅसी आ रही है। पर हमारी हालत तो और भी अधिक हास्यास्पद है। भिखारी का किसी स्थान के प्रति ममत्व का, अधिकार का भाव तो वर्षो मे पनपा है, लेकिन हम हमारे अधिकार भाव को देखे। दिल्ली से आगरा के लिए 'ताज' मे बैठते है, मात्र तीन घटे की सफर, लेकिन हमारे द्वारा आरक्षित सीट पर अगर कोई दूसरा वृद्ध भी बैठ जाता है तो हम उससे तत्काल कह देते है, 'भाई साहब ! उठिये।' वह कहता है, 'क्यो ?' हम कह देते है, 'यह सीट मेरी है।'

मात्र तीन घटे के लिए आरक्षित सीट के प्रति भी हमारा कितना जबरदस्त अधिकार भाव ! लोग इस सीट के लिए 'तू-तू, मै-मै' पर उतारू हो जाते है। इस रागात्मक वृत्ति को ही महावीर मूर्च्छा कहते है, शकर माया कहते है और पतजलि बेहोशी कहते है।

ससार मे रहना हमारा धर्म है, क्योकि ससार मे ही हमारा पुष्प पल्लवित हुआ है, खिला है। जो भोग मे जी रहा है, वह भी ससार मे है और जो योग मे जी रहा है वह भी। लेकिन योगी नाम भर को ससार मे है और भोगी न केवल स्वय ससार मे है, अपितु अपने भीतर भी ससार को बसाये है।

ससार और सन्यास का भेद कीडे और कमल से समझे। कीचड मे कमल भी पैदा होता है और कीडा भी। लेकिन एक, जैसे-जैसे अपने अस्तित्व को आत्मसात् करता है, वैसे-वैसे कीचड मे धँसता जाता है वही दूसरा, इसके विपरित अपने अस्तित्व को आत्मसात् करते ही कीचड

से उपरत हो जाता है । कीडा कीचड मे धसता है और कमल कीचड से बाहर आ जाता है । कमल का जीवन श्रमण का जीवन है, एक सन्यासी-साधक का जीवन है ।

महावीर आज के सूत्र मे कीचड से बाहर निकलने के सकेत दे रहे है । वे मनुष्य को दलदल से बाहर निकालना चाहते है और अस्तित्व की पहचान कराना चाहते है । इसलिए महावीर के सूत्र-सन्देश जीवन, जगत् और अध्यात्म तीनो से जुडे है । महावीर जगत् की पहचान करवाकर, जीवन को अधे-अभिशप्त गलियारो से बाहर निकालना चाहते है । वे मनुष्य को अध्यात्म के उस सन्देश का मालिक बनाना चाहते है, जिसका मार्ग न केवल निष्कटक है, अपितु प्रशस्त है ।

महावीर केवल ऑखे मूदकर बैठने की प्रेरणा नही दे रहे है । वे साक्षात्कार करा है रहे मनुष्य को उस तत्त्व से जो अदृश्य है, अस्पृश्य है। आत्मा को भला कभी देखा-दिखाया जा सकता है, जलाया-मिटाया जा सकता है । न इस तत्त्व की व्याख्या की जा सकती है, न उपदेश दिये जा सकते है । दर्शन का भला कैसा प्रदर्शन ! आत्मा का मात्र अनुभव किया जा सकता है, जीया जा सकता है ।

महावीर की भाषा बोध की भाषा है । वे जीवन को कीचड से उपरत करना चाहते है । अभिशप्त जिदगी को वरदान रूप मे परिवर्तित करना चाहते है । वे व्यक्ति को ऐसे किसी दल मे नही रखना चाहते जो दल-दल मे ले जाये ।

न पक्ष, न विपक्ष, महावीर निष्पक्ष की बाते बता रहे है । वे दुनिया के सामने एक चिकित्सक बनकर पेश आ रहे है, ताकि रोगी को रोग का बोध कराया जा सके । महावीर उस रोग का बोध कराना चाहते है जिसके कारण व्यक्ति पीडित है, व्यथित है, व्याकुल है ।

ज्ञानियो की यह खासियत होती है, वे रोगी को सीधे दवा नही देते है, पहले रोग की पहचान, फिर निदान । महावीर पहले रोग का बोध कराते है, फिर दवा देते है, पहले प्यास जगाते है, फिर पानी पिलाते है ।

महावीर 'मै' का बोध भी कराना चाहते है और 'मै' से छुटकारा भी दिलाना चाहते है । 'मै' जो अहकार के अर्थ मे प्रयुक्त है, उसके गिरते ही, वह 'मै' प्रकट हो जाता है जिसे हम आत्मा कहते है । अहम्

के बोध के अभाव मे अर्हम् की उपलब्धि कैसी ? महावीर सर्वप्रथम अहकार के 'मै' को गिराना चाहते है, फिर मेरेपन को, ममत्व के भाव को। मै और मेरा, यही मिथ्यात्व है, माया है, सम्मोहन है। आसक्ति इसी का अपर नाम हैं।

महावीर की भाषा तो कैवल्य की भाषा है। एक की भाषा, अपने आपसे जुडने की भाषा है 'अहमिक्को खलु सुद्धो' मै अकेला हूॅ, शुद्ध हूँ। भीड मे भी नि सग करा रहे है महावीर।

'सब ठौर हमरी जमात, सब ठौर पर मेला।

हम सब माही, सब हम माही, हमही बहुरि अकेला।'

कबीर का यह पद, महावीर के सूत्र का ही विस्तार है। महावीर का यह सूत्र सासारिक मायाजाल से मुक्त होने का मत्र है। हमे सर्वप्रथम यह ज्ञात होना आवश्यक है कि 'मै कौन हूॅ।' मेरी जिदगी मे दूसरे की किस हद तक जरूरत है। व्यक्ति को यह भी ज्ञात नही है कि मै कौन हूॅ, दुनिया मे मेरा कौन है और वह दूसरो से सम्बन्ध स्थापित करने को लालायित है। दुनियाँ में ममता बाटना हमारा धर्म है, लेकिन ममत्व बुद्धि, जिसे हम मोह कह सकते है इसका सकुचन आवश्यक है। वात्सल्य और ममता, प्रेम का विस्तार है वही राग और आसक्ति प्रेम को बेडियो मे जकडना है। महावीर सर्वप्रथम आत्म-परिचय प्राप्त करने को प्रेरित कर रहे है। जो ऐसा कर लेता है वह पूर्ण हो जाता है। बिना शून्य का बोध प्राप्त किये विराटता को पहचाना नही जा सकता। 'जे एग जाणई से सव्व जाणई' जो एक को, अपने आपको जानता है वह सब को, सारे ससार को जान लेता है। बूद मे भी सागर छलक सकता है।

आज के सूत्र को गहराई से समझे। 'जैसे दल-दल मे फसा हाथी तट को देखते हुए भी किनारे नही पहुँच पाता', यह सूत्र ससार और उसकी आसक्ति से ऑख दो-चार करवा रहा है। जैसे मकडी के जाल मे अनगिनत रेशे होते है वैसे ही आसक्ति के रेशे है। महावीर जीवन की उस अन्तिम घडी तक व्यक्ति को सचेत रहने का सकेत दे रहे है, जहाँ आसक्ति का एक रेशा भी जुडा हो।

महावीर श्रमण-धर्म की ओर जीवन की धारा मोड रहे है। जीवन मे जानना ही पर्याप्त नही है , ज्ञान का आचरण भी अनिवार्य है। हम

धर्म के सिद्धान्तो को जानते है, लेकिन जानते हुए भी अपना नही पाते। दुर्योधन बहुधा कहा करता था,'जानामि धर्मं न च' मे प्रवृत्ति, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति ।' मै धर्म को जानता हूॅ लेकिन मेरी उसमे प्रवृति नही हो सकती । मै अधर्म को भी जानता हूॅ लेकिन उससे भी निवृत्ति मेरे हाथ की बात नही है। यह उस व्यक्ति की अन्तर्व्यथा है जो मुक्त गगन को देखकर भी पिंजरे मे फसा है । ऐसा नही है कि व्यक्ति पाप और पुण्य से अनभिज्ञ हो । शक्कर और धूल दोनो का भेद व्यक्ति जानता है , धर्म-अधर्म दोनो को देखता है, लेकिन सासारिक रसो मे आसक्ति उसे श्रेय की ओर दो कदम भी नही बढाने देती । गोरख कहा करते थे, 'पहले आरभ छाडो, काम, क्रोध, अहकार।' अगर आरभ करनी है अध्यात्म की यात्रा, तो छोडना होगा सबसे पहले काम, क्रोध, और अहकार को । काम का अर्थ होता है– चाह, इच्छा । चाह सदा दूसरे की होती है, दूसरे से होती है । वहॉ काम और अधिक मजबूत हो जाता है, जहॉ दूसरे के बिना हमारा काम नहीं चलता । विपरीत की चाहना हमारा स्वभाव है । इसी का परिणाम है कि पुरुष स्त्रियो के पीछे दौडता है और स्त्रियॉ पुरुषो के पीछे ।

गोरख क्रोध, काम और अहकार को एक ही मच पर खडा कर रहे है । तीनो एक दूजे से जुडे है । क्रोध और अहकार का तो चोली-दामन का रिश्ता है । ये दोनो ही व्यक्तित्व-विकास के मार्ग मे काटे बिखेरते है । लडाई-झगडा करना कोई रोग नही है बल्कि व्यक्ति क्रोध और अहकार के कारण ही ऐसा करता है । जीवन मे ऊचाईयो को छूने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति क्रोध और अहकार का पूर्ण त्याग कर दे। इससे व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और आर्थिक हानि उठानी पडती है ।

क्रोध, व्यक्ति को मानसिक रोगी बनाता है । क्रोध का सीधा प्रभाव स्नायविक सस्थान पर होता है और स्नायु मडल पर पुन पुन झटका लगने से व्यक्ति मानसिक रूप से रुग्ण हो जाता है । परिणाम स्वरूप क्रोधी व्यक्ति की स्मृति कमजोर हो जाती है, बात-बात मे झुझलाहट होती है, और तो और इसका परिणाम पागलपन मे भी परिवर्तित हो सकता है । जब क्रोध अपने पूर्ण वेग मे होता है तो मनुष्य का रक्त भी जहरीला हो जाता है । वैज्ञानिक अनुसधान के अनुसार, ऐसी दशा मे एक पाउड खून जलकर समाप्त हो सकता है ।

दु ख । तमन्ना करोगे बहारो की, मिलेगे जख्म–

मैने चॉद और सितारो की तमन्ना की थी,

मुझको रातो की सियाही के सिवा कुछ न मिला ।

मै वह नग्मा हूँ, जिसे प्यारकी महफिल न मिली ।

वह मुसाफिर हूँ, जिसे कोई मजिल न मिली ।

जख्म पाए है, बहारो की तमन्ना की थी,

मैने चॉद और सितारो की तमन्ना की थी ॥

दिल मे नाकाम उम्मीदो के बसेरे पाए ।

रोशनी लेने को निकला तो अधेरे पाए ।

रग और नूर धागो की तमन्ना की थी,

मैने चॉद और सितारो की तमन्ना की थी ॥

यहॉ किसी को कुछ नही मिला है । तमन्नाएँ चॉद-सितारो की है, पर रात की सियाही हाथ लगी है । मॉगने के लिए व्यक्ति स्वतन्त्र है, लेकिन मिलने वाला कुछ नही है । महावीर कल्पनाओ के जाल से व्यक्ति को बाहर निकालकर, याचना की प्रवृत्ति से छुटकारा दिलाना चाहते है । वे दल-दल से निकालकर हर-एक को स्वतत्र करना चाह रहे है ।

महावीर ने काम-भोग नही कहा, काम-गुण कहा, क्योकि आसक्ति के अनेक मार्ग होते है । स्त्री-राग और पुरुष-राग तो होता ही है, इसके अतिरिक्त ऐसे कई राग होते है जिनका सम्बन्ध स्त्री और पुरुष के साथ नही अपितु अपनी इन्द्रियो या अन्य सम्बन्धो के साथ होता है । जितना हानिकर पुरुष राग/स्त्री राग है, उतना ही, या यूँ कहूँ उससे ज्यादा इन्द्रिय राग हानिकर है । इन्द्रियो मे आसक्त व्यक्ति स्वय को विपत्तियो मे धकेल देता है ।

मै बगाल की यात्रा पर था । वहॉ देखा करता तालाब के किनारे मछुआरे एक लकडी के किनारे धागा लटकाये रखते और धागे के किनारे एक कील । वे कील के चारो और आटा चिपका देते । फिर उसे तालाब मे डालते, बाहर निकालते तो मछली का मुह कील मे फसा होता था। मछली इसलिए फसी काटे मे क्योकि जिह्वा-राग और आटे की आसक्ति

ने, उसे मोह लिया।

ऐसा नही है कि मछली को काटा दिखाई नही दे रहा था। लेकिन कभी-कभी प्राणी जान-बूझकर भी फस जाता है। हमारी प्रवृत्तियॉ भी तो ऐसी ही है। मछली आटे के कारण काटे मे फसती है, हाथी कमल के लिए कीचड मे धसता है, पतगा रोशनी से मोहित हो दीप मे जलता है और मनुष्य कामेच्छा के कारण ससार मे डुबकियॉ लगाता है।

काम-पूर्ति से कामेच्छा शात हो जाती हो, ऐसा नही है। जैसे-जैसे कामनाओ की पूर्ति की जाती है वैसे-वैसे कामनाए बढती जाती है। खुजलाहट के समय तो मन को अच्छा लगता है, लेकिन तब सिवा पछतावे के कुछ हाथ नही लगता जब मवाद और खून रिसना शुरु हो जाता है। जैसे खुजली को खुजलाने से खुजलाहट और बढ़ती है वैसे ही काम-भोग की पूर्ति से उत्तेजना और अभिवर्द्धित होती है। काम-भोग से तृप्ति जीवन मे तब तक हासिल नही हो पाती जब तक आखो की ज्योति नही चली जाती है, कमर नही झुक जाती। एक बीस-पच्चीस वर्ष का युवक अगर विवाह की तमन्ना रखे तो बात फबती है लेकिन दुनियाँ मे उम्रदराज वृद्ध भी विवाह कर रहे है। पहले की तीन चली गई तो चौथा विवाह कर रहे है। पचास-साठ बसन्त बीत गये है, पर तृप्ति तो नजर भी नही आती।

मै इरोड मे था। होली के अगले दिन किसी महानुभाव ने अपने घर विशेष प्रवचन का आयोजन किया। प्रवचन के बाद एक मुनिजी ने उस महानुभाव से कहा, जो करीब पचास वर्ष के थे कि महीने मे दस दिन तक ब्रह्मचर्य-पालन की प्रतिज्ञा ले लो। पत्नी भी पास खडी थी उसने हामी भर ली। लेकिन वे पचास वर्षीय महानुभाव पत्नी की और इशारा कर बोले, 'महाराज जी ! ब्रह्मचर्य की कसम इसी को दिला दो, मै नही लेना चाहता।'

लोग बचना चाहते है, यह सोचकर कि यहॉ नही तो कही और तृप्ति पा लेगे। लेकिन वहाँ भी तृप्ति कहाँ सम्भव है ? क्षणिक आनद की अनुभूति हो सकती है, पर यह सब कुछ मानने भर को होता है। कामेच्छा की तृप्ति मे आनद की अनुभूति ठीक वैसे ही होती है जैसे कुत्ते को हड्डी चूसने मे। हड्डी चबाने वाला कुत्ता सोचता है खून हड्डी मे से आ रहा है। हकीकत मे खून हड्डी मे से नही, उसकी जीभ से आ रहा है और कुत्ता सोचता है हड्डी मे आनद आ रहा है।

इस ससार मे और सासारिक भोगो मे कही सार नही है। जितना भोगेगे तृष्णा उतनी ही बलवती होगी। घी डालकर आग बुझाना बेवकूफी नही तो और क्या है ? इन सबमे न आनद है, न तृप्ति, मात्र सम्मोहन है। आज अफसोस होता है, कल फिर उत्तेजना होगी। कल फिर अफसोस होगा, परसो फिर उत्तेजना जगेगी। यह अफसोस और उत्तेजना तो बारी-बारी चलती रहेगी। चाहे जितने गहरे उतर जाना ससार मे, अन्त मे व्यर्थता ही हाथ लगेगी।

भोग मे आनद की खोज प्याज के छिलके उतारकर प्याज का अस्तित्व ढूढना है। प्याज को ढूढने के लिए एक-एक छिलके उतारते रहोगे, अन्त मे सिवा खोखलेपन के क्या हाथ लगेगा ? प्याज का अस्तित्व छिलको के सहारे है और भोग का अस्तित्व सम्मोहन के सहारे। जैसे-जैसे सम्मोहन टूटता जायेगा वैसे-वैसे उसके प्रति होने वाली आसक्ति भी कम होती जाएगी।

महावीर कहते है काम-गुणो मे आसक्ति। महावीर अनासक्त बनाने के लिए आसक्ति से भी नजर मुहैय्या करा रहे है। सत् को समझने के लिए आवश्यक है पहले, असत् को समझा जाये। महावीर पहले पहचान कराते है फिर छुटकारा दिलाते है। अगर आसक्ति छूटी तो सैक्स के प्रति अपने आप उदासीन वृत्ति पैदा हो जाएगी।

काम-भोगो की आसक्ति से छुटकारा परिवार-नियोजन की पारम्परिक शैली है। महावीर इसे पारिवारिक एव सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य भी मानते है। इसलिए महावीर ने अणुव्रत मे ब्रह्मचर्य को स्वतत्र रूप से स्वीकार किया। महावीर से पूर्व तीर्थकर पार्श्व ने ब्रह्मचर्य को अपरिग्रह के अन्तर्गत ही स्वीकार कर लिया था, लेकिन महावीर ने इस व्रत को समाज एव देश मे व्यापक रूप मे फैलाने के लिए, इसे अधिक महिमा मडित किया ताकि न केवल आसक्ति के तार ढीले पडे, अपितु जनसख्या वृद्धि पर भी रोकथाम हो सके। महावीर ने सब व्रतो मे ब्रह्मचर्य को दुष्कर और श्रेयस्कर स्वीकार किया।

देव-दाणव-गधव्वा, जक्खरक्खस्स किन्नरा।

बम्भयारि नमसति, दुक्कर जे करति त।

उस ब्रह्मचारी को देव-दानव-गधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर— ये सभी प्रणाम करते है, जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

ब्रह्मचर्य के तेज के सामने सभी को निस्तेज कर दिया महावीर ने। ब्रह्मचारी के चरणो मे सभी का मत्था टिकवा दिया। ये जितने भी देव, राक्षस, किन्नर, गन्धर्व और यक्ष है ये सब विधाता के सामने भी अडिग रहेगे लेकिन तब मात खा जाते है जब 'मार' का प्रभाव उन पर आता है। जब कामदेव हावी होता है सब समर्पित हो जाते है। यहाँ तो विश्व-विजेता भी हार जाएगा। व्यक्ति दुनिया का शासक हो सकता है लेकिन अपनी बीबी का ? कहते है हिटलर जिसके नाम से दुनिया काँपती थी वह भी अपनी बीबी के सामने तो खुद ही थरथर्राता था।

महावीर काम-मुक्ति का सन्देश दे रहे है, ब्रह्मचर्य का पाठ पढावा रहे है। वे ब्रह्मचर्य के माध्यम से आत्म-शक्ति तो बढाना चाहते ही है देश की शक्ति को भी और अधिक पुष्ट करना चाहते है। परिवार-नियोजन के आधुनिक उपायो से जनसख्या-वृद्धि तो रुक जायेगी, पर वासना, कामेच्छा-भोगेच्छा भरपूर फैल जायेगी। मात्र परिवार-नियोजन ही नही, देश को सुखी-समद्ध करने के लिए, इच्छा-नियोजन भी होना आवश्यक है। सदाचार के साये मे जीने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी कामना, वासना और तृष्णा पर भी लगाम लगाये। शकर, अरविन्द, विवेकानन्द और विनोबा ये सब वे ब्रह्मचारी हुए है, जिन पर इस देश को नाज है।

आज विश्व मे 'एड्स' का रोग हर कोने मे अपने पॉव पसार रहा है। ऐसे समय मे अगर महावीर के ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त, को सम्पूर्ण विश्व मे आधुनिक रीति से पेश किया जाये, तो महाविनाशकारी एड्स को भी धरती से अपने पॉव सिकुडने पडेगे। यह प्रश्न बेबुनियादी है कि अगर सारी दुनिया ही सैक्स से विमुख हो जायेगी तो क्या ससार का अस्तित्व प्रभावित नही होगा ? न ऐसा हुआ है न हो सकता है। ब्रह्मचर्य को सामान्य व्रत न समझे। इस धरती पर एड्स जैसे रोग न फैले इसी उद्देश्य से महावीर ने दुनिया को एक व्रत दिया, 'स्वपत्नी सन्तोष व्रत।' अपनी एक पत्नी के साथ सहवास। आज के चिकित्सक कहते है, अगर ऐसा हो जाये तो 'एड्स' पृथ्वी पर फैल न पायेगा।

एड्स का जन्म ही मनुष्य की भोगेच्छा की विपुलता के कारण हुआ है। हालाकि एड्स रोग के पैदा होने के कारण तो कई हो सकते है किन्तु इस रोग के फैलाव का मुख्य कारण अनेको के साथ सम्पर्क और सहवास रहा है। एड्स तभी पनपता है जब भिन्न-भिन्न शरीरो के कीटाणु,

शारीरिक सम्पर्क के कारण एक दूसरे मे स्थानान्तरित होते है। यदि आने वाली पीढी मे हम बिना किसी झिझक के यह सस्कार दे, कि व्यक्ति को अपने जीवन मे एक ही जीवन-साथी चुनना चाहिये। जीवन के नैतिक मूल्य मानसिक एव स्वास्थ्य परक दृष्टि से भी यह बात स्वीकार्य है, और जीवन मे दृढता के साथ अमल मे लाने जैसी है।

श्रमण-धर्म मे प्रवेश करने से पूर्व, महावीर काममुक्ति को अनिवार्य मान रहे है। स्त्री और पुरुष दोनो के विपरीतधर्मी हारमोन्स होते है, जो एक-दूजे को अपनी ओर खीचते रहते है। सडक पर चलते हुए मजनुओ को देखा ? वे अपने दोस्त की ओर नजर तक नही डालेगे-, किन्तु उसकी ओर ताक-झाक करेगे जिससे कोई जान-पहचान भी नही है। ये हारमोन्स प्रभावित कर रहे है।

दुनिया मे जितने बलात्कार होते है, वेश्याओ के कोठे चलते है या कॉलगर्ल्स के नाम पर जितनी युवतियॉ बर्बाद होती है, सब मनुष्य की कामान्धता का परिणाम है। यह सच है कि उल्लू को दिन मे नही दिखता और कौए को रात मे, पर यह भी सत्य है कि कामान्ध न दिन मे देख पाता है न रात मे। उसके लिए किसी के जीवन का अस्तित्व तक गौण हो जाता है, अपनी कामेच्छा की पूर्ति के सामने। पता नही इस ससार मे लिनेवेल्ड जैसे कितने कामान्ध लोग हुए है, जिन्होने अपनी जिदगी मे हवस पूर्ति के लिए सैकडो-सैकडो महिलाओ के साथ बलात्कार कर, उनकी हत्या कर दी।

मैने सुना है, एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को रिझाने के लिए कह रहा था, कहो तो मै आसमान से सितारे तोडकर तुम्हारी मॉग मे सजा दूँ, और तो और तुम्हारे लिए मै जिदगी की सभी खुशियॉ तुम्हारे कदमो मे न्यौछावर कर सकता हूँ, पर तुम मुझसे विवाह कर लो।

प्रेमिका जो इस तरह के वादे सुनने की आदि थी, वह समझ गयी यह प्यार से पहले इकरार है। उसने गम्भीर होते हुए कहा, 'मुझे न चॉद-सितारे चाहिये और न ही तुम्हारी खुशियॉ। अगर तुम सच मे मुझे चाहते हो, तो अपनी माँ का कलेजा लाकर मुझे दो।'

युवक ने कहा, 'तुमने भी क्या मागा। यह इच्छा तो मै आज ही पूरी कर दूँगा।' वह घर की ओर रवाना हो गया। मार्ग मे छुरा खरीदा और घर पहुँचा। मॉ पलग पर सोई थी, छुरा घोपते ही आह की चीख निकली। उसने वही थाली ली जिसमे मॉ रोज खाना खिलाती थी, मॉ

का कलेजा निकाला, थाली मे रखा, कपडे से ढॉका और रवाना हो गया।

रात अधेरी थी। मार्ग मे ठोकर लगी, वह लडखडाया और गिर पडा। वह कुछ सम्हलता उससे पहले ही आवाज आयी, 'बेटा । चोट तो नही आयी।' चौककर उसने इधर-उधर झाका पर वहॉ कोई न था।

कुछ क्षण बाद फिर वही आवाज गूजी। उसने गौर किया, आवाज थाली मे से आ रही थी, उस कलेजे से, जिसका अणु-अणु मॉ की ममता से भरा था। वह जैसे ही थाली उठाने लगा कलेजा फिर गुनगुनाने लगा, 'हाय रे लाल । तेरे चोट तो नही आयी।'

शायद उसके स्थान पर पत्थर होता तो भी पिघल जाता लेकिन इन्सान । पता नही किन कठोरतम और निर्दयी पलो मे वह धरती पर आया था, न पिघला सो न ही पिघला। उसने थाली उठायी रवाना हो गया। प्रेमिका के घर पहुॅचा, देखा, दरवाजे पर ताले लगा था। दरवाजे पर काले अक्षरो मे लिखे वाक्य को पढ़कर वह हक्का-बक्का रह गया। उस पर लिखा था, 'जो अपनी माँ का नही वो हमारा क्या होगा।'

इस दुनियॉ मे ऐसे एक नही अनेक किस्से है। कामान्धता के कारण ही व्यक्ति उस हद तक गिरा है, जिस पर मानवता हमेशा शर्म करती है। इस देश मे तब तक रावण जैसे लोग पैदा होते रहेगे, सीता का अपहरण होता रहेगा, जब तक कामेच्छा पर लगाम न लगेगी। इसमे व्यक्ति जैसे-जैसे फसेगा वैसे-वैसे धसेगा। महावीर तट तक पहुॅचाने की कोशिश कर रहे है, उस किनारे तक जहाँ ससार पीछे छूट जाता है, दो कदम सन्यास की ओर बढ जाते है।

आसक्त व्यक्ति श्रमण-धर्म को पहचान कर भी, आसक्ति छोड देता हो ऐसी बात नही है। जीवन के अन्तिम चरण मे भी व्यक्ति की आसक्ति के महीन रेशे टूट नही पाते, महावीर और बुद्ध के वचनो का जो लोग मखौल उडाते है, कहते है, इन्होने कर्मयोग की हत्या की है , वे गलत सोचते है। महावीर कर्मयोग के विरोधी नही है। वे चाहते है हर व्यक्ति अनासक्त कर्मयोगी बने, भरत और जनक की तरह। उस व्यक्ति को भला क्या कर्मयोगी कहा जायेगा, जो वृक्ष की एक टहनी पकडकर लटका है। नीचे कुआ है, कुए मे अजगर है, टहनी को चूहा काट रहा है। पल-दो-पल मे टहनी टूटने वाली है। बचाने वाला कहता है, लो,

शारीरिक सम्पर्क के कारण एक दूसरे मे स्थानान्तरित होते है। यदि आने वाली पीढी मे हम बिना किसी झिझक के यह सस्कार दे, कि व्यक्ति को अपने जीवन मे एक ही जीवन-साथी चुनना चाहिये। जीवन के नैतिक मूल्य मानसिक एव स्वास्थ्य परक दृष्टि से भी यह बात स्वीकार्य है, और जीवन मे दृढता के साथ अमल मे लाने जैसी है।

श्रमण-धर्म मे प्रवेश करने से पूर्व, महावीर काममुक्ति को अनिवार्य मान रहे है। स्त्री और पुरुष दोनो के विपरीतधर्मी हारमोन्स होते है, जो एक-दूजे को अपनी ओर खीचते रहते है। सडक पर चलते हुए मजनुओ को देखा ? वे अपने दोस्त की ओर नजर तक नही डालेगे-, किन्तु उसकी ओर ताक-झाक करेगे जिससे कोई जान-पहचान भी नही है। ये हारमोन्स प्रभावित कर रहे है।

दुनिया मे जितने बलात्कार होते है, वेश्याओ के कोठे चलते है या कॉलगर्ल्स के नाम पर जितनी युवतियॉ बर्बाद होती है, सब मनुष्य की कामान्धता का परिणाम है। यह सच है कि उल्लू को दिन मे नही दिखता और कौए को रात मे, पर यह भी सत्य है कि कामान्ध न दिन मे देख पाता है न रात मे। उसके लिए किसी के जीवन का अस्तित्व तक गौण हो जाता है, अपनी कामेच्छा की पूर्ति के सामने। पता नही इस ससार मे लिनेवेल्ड जैसे कितने कामान्ध लोग हुए है, जिन्होने अपनी जिदगी मे हवस पूर्ति के लिए सैकडो-सैकडो महिलाओ के साथ बलात्कार कर, उनकी हत्या कर दी।

मैने सुना है, एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को रिझाने के लिए कह रहा था, कहो तो मै आसमान से सितारे तोडकर तुम्हारी मॉग मे सजा दूँ, और तो और तुम्हारे लिए मै जिदगी की सभी खुशियॉ तुम्हारे कदमो मे न्योछावर कर सकता हूँ, पर तुम मुझसे विवाह कर लो।

प्रेमिका जो इस तरह के वादे सुनने की आदि थी, वह समझ गयी यह प्यार से पहले इकरार है। उसने गम्भीर होते हुए कहा, 'मुझे न चाद-सितारे चाहिये और न ही तुम्हारी खुशियॉ। अगर तुम सच मे मुझे चाहते हो, तो अपनी मॉ का कलेजा लाकर मुझे दो।'

युवक ने कहा, 'तुमने भी क्या मागा। यह इच्छा तो मै आज ही पूरी कर दूगा।' वह घर की ओर रवाना हो गया। मार्ग मे छुरा खरीदा और घर पहुचा। मा पलग पर सोई थी, छुरा घोपते ही आह की चीख निकली। उसने वही थाली ली जिसमे मॉ रोज खाना खिलाती थी, मॉ

चाहिये, लेकिन आवश्यकताओ की पूर्ति तब गुनाह का बाना पहन लेती है जब आसक्ति और आकाक्षा के दीमक उससे सट जाते है। आवश्यकता दो रोटी की होती है, पर आकाक्षा बादाम, पिस्ते और मिठाई की। आवश्यकता दो साडी की होती है, पर आकाक्षा सौ साडी की। आवश्यकता कमरे की और आकाक्षा महल की। आवश्यकता और आकाक्षा मे फर्क है। आवश्यकता का घडा भरा जा सकता है लेकिन आकाक्षा का, बे-तल का पात्र, दुष्पूर है।

आज के सूत्र मे महावीर का अन्तिम सदेश है, अनुसरण का। श्रमण-धर्म को जानना ही पर्याप्त नही है, आवश्यकता है तदनुसार अनुकरण की। सत्य का ज्ञान करना जरूरी है, पर ज्ञात सत्य का आचरण करना भी अनिवार्य है। जब तक पुरजोर कोशिश न होगी बाहर निकलना सम्भव नही है।

जिस व्यक्ति ने अब तक सैकडो-हजारो सिगरेटो के पैकेट खाली किये है, क्या उसने उस पर लिखी वह वैधानिक चेतावनी नही पढी है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। व्यक्ति रोज चेतावनी पढ़ता है, रात भर खॉसता है फिर भी पीता है। जानबूझकर अपने आपको फसाता है, यही तो आसक्ति है। जिस दिन यह चेतावनी, तुम्हे चेता दे और तुम चेत जाओ उसी दिन, दिल से वह चीज निकल जाएगी, बिखर जाएगी। तब, अब तक जिस दिलोजान से सिगरेट पीते रहे, ससार मे अटके रहे, उसी कर्दम मे से एक कली बाहर आएगी। कली का यह बाहर निकलना ही जीवन के द्वार पर अनासक्ति की दस्तक है। उस दिन परिपूर्णता समझना जब यह कली कमल बन जाये, ससार मे समाधि खिल आए, वासना से उपरत होते हुए निर्वाण आत्मसात् हो जाये।

□

सत्य वाणी का, अंतर का

"सत्य क्या है ? सम्भव है इस प्रश्न का उत्तर दुनिया मे तुम्हे, सिवाय तुम्हारे कोई न दे पाएगा। अगर किसी को पूछने से ही सत्य ज्ञात हो जाता या शास्त्रो के सदर्भो मे मिल जाता तो महावीर और बुद्ध सत्य की खोज मे घर परिवार त्याग कर अनजान जगल मे न जाते। सत्य का न तो उपदेश होता है और न ही शास्त्र। जैसे प्रेम का कोई शास्त्र नही होता, विधिवत् प्रशिक्षण नही होता वैसे ही सत्य का कोई शिक्षा-शास्त्र नही होता।"

हमारा जीवन स्वय में एक सुअवसर है । जीवन से जुडे हुए जितने भी पहलू है, प्रत्येक की अपनी मूल्यवत्ता है । मनुष्य को चाहिये कि वह हर कदम सम्हाल कर रखे । जीवन मूल्यवान है, फिर चाहे वह अमीर का हो या गरीब का । ऐसा नही है कि एक सम्राट का जीवन बहुमूल्य है, वरन् एक भिखारी का जीवन भी उतना ही मूल्यवान् है, क्योकि जीवन की दृष्टि से दोनो समान है । नीति कहती है कि वास्तविक सम्राट वह है, जो नगर मे होने वाली किसी भिखारी की मृत्यु को भी अपनी मृत्यु माने ।

सम्राट और भिखारी, गरीब और अमीर—ये भेद रेखाए जीवन की दृष्टि से नही, अपितु व्यवहार की दृष्टि से है । कृष्ण हो या कस, राम हो या रावण, ईसा हो या पाटियस, महावीर हो या गोशालक जीवन की दृष्टि से तो सबने जीवन जीया, लेकिन जीवन-शैली मे फर्क पडा । किसी ने जीवन मे दिव्यत्व हासिल किया और किसी ने पशुत्व । कोई अधकार में जिया, कोई प्रकाश मे ।

जीवन का विकास या विनाश ये किसी और पर नही अपितु स्वय हम पर निर्भर हैं । सृष्टि पर प्रत्येक शिशु का आगमन सत्य रूप ही होता है लेकिन झूठ, चोरी और बेइमानी का घालमेल वह उन सब लोगो से सीखता है जिनके साथ वह पलता है, पढता है, बढता है ।

यह जीवन की दोहरी नीति है कि व्यक्ति बाते तो ईमान की करता है, तर्क सत्य के पेश करता है लेकिन जीवन इन सबसे कोसो दूर मिलता है । होता कुछ है, दिखाया कुछ जाता है । कहा कुछ जाता है, किया कुछ जाता है । यह जीवन की दोहरी नीति है । इसलिए मुझसे यदि कोई पुछे तो, मै कहता हू कि दो मुहाँ सर्प नही, अपितु मनुष्य होता है । असलियत छिपाई जाती है नकली चेहरा पेश किया जाता है। दिन भर बेईमानी की जाती है, एक दूजे के प्रति घृणा और वैमनस्य की कटारी चलाई जाती है और सभाओ मे ईमानदारी से जीने का सदेश दिया जाता है, प्रेम और प्यार की बाते बताई जाती है । भाषण अहिंसा के और भोजन अडे का । यह मनुष्य के दो मुहे व्यक्तित्व की निशानी

नही तो और क्या है ?

लोग अपनी असलियत को छिपाते है और बातचीत मे बडी-बडी डीगें हॉकते है। मै उन लोगों से अपने-आपको बहुत दूर रखना चाहता हूँ, क्योकि ये लोग कथनी और करनी मे कहीं तालमेल नही बैठा पाते है। घर मे खाने को रोटी नही होगी और अपनी पहुँच सत्ता शिखर तक बताएगे, इसी तरह राजनीति मे लोग लगातार झूठ, फरेब, बेइमानी का सहारा लेकर जीवन-मूल्यो को आहत कर रहे है।

महावीर का आज का सूत्र मनुष्य के दोहरेपन को समाप्त करने के लिए ही है। उनका सूत्र है–

सच्चम्मि वसदि तवो,
सच्चम्मि सजमो तह वसे सेसाविगुणा।
सच्च णिबधण हिय
गुणाणमुदधीव मच्छाण ॥

सत्य मे तप, सयम और शेष समस्त गुणो का वास होता है। जैसे समुद्र जलचर जीवो का उत्पत्ति स्थान है वैसे ही सत्य समस्त गुणो का कारण है।

महावीर कहते है, 'सत्य मे तप, सयम और शेष समस्त गुणो का वास होता है।' महावीर की बात महत्वपूर्ण है। वे तपस्या को सत्य मे ढूढ रहे है, सयम और साधना के समस्त आयामो को भी सत्य मे खोजते है। चाहे हम तप करे या सयम का अनुपालन, अगर यह सब कुछ सत्य से ओतप्रोत नही है तो जीवन और अध्यात्म के साथ बेइसाफी होगी, क्योकि जीवन की महत्ता सत्य मे जीने मे है।

तुलसीदास धर्म के समस्त अगों को सत्य मे ही स्वीकार करते है। उनके अनुसार सृष्टि के जितने भी सुकृत्य है सब का निवास सत्य मे है, 'धरम न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना।' इसे हम यो समझे जैसे सागर मे समस्त नदियॉ आकर समा जाती है वैसे ही सत्य है, जिसमे धर्म के समस्त गुण समा जाते है। सम्भव है, व्यवहार मे हम सभी सयम का पालन कर लेगे, सामायिक और प्रतिक्रमण भी कर लेगे, पर भीतर से अगर यह सब कुछ नही होगा, तो यह भी जीवन का दोहरापन होगा। अगर तुम्हारे जीवन मे किसी प्रकार की त्रुटि है तो उसे छिपाओ मत, प्रकट कर दो, क्योकि मवाद

को जितना ज्यादा दबाया जाएगा, उतना ही ज्यादा वह शरीर के लिए हानिकारक होगा।

चोले को बदलना अलग बात है और जीवन को बदलना अलग बात है। वेश का परिवर्तन व्यावहारिक रूप मे दीक्षा है, लेकिन महावीर की नजरो मे, जीवन मे, सत्य का अनुष्ठान, यह वास्तविक प्रव्रज्या है। अधकार से प्रकाश की ओर गति तभी हो पाएगी जब अपने जीवन मे बुराइयो को चुन-चुन कर बाहर निकालोगे, क्योकि बुराइयो को जितना ज्यादा भीतर दबाओगे वे अपनी शाखाएँ फैलाती जाएगी और जडें गहरी करती जाएगी। अगर सयम के मार्ग मे कोई साधक दोहरी नीति अपनाता है, तो उसकी साधना स्वय मे एक प्रश्न चिह्न है। प्रव्रज्या सत्य को दबाने के लिए नही, सत्य को स्वीकार करने, प्रगट करने के लिए है। अगर एक साधु की आवश्यकता है कि वह 'कोलगेट पेस्ट' का प्रयोग करे, तो यह सोचकर, छिपकर उसका उपयोग नही करना चाहिए कि समाज क्या कहेगा, सभव है मुनि के लिए 'पेस्ट' से मजन करना अनुचित है, पर छिपकर करना क्या इससे ज्यादा अनुचित नही है। जो कुछ करते हो खुले-आम करो। हो सकता छिपकर करने से तुम व्यवहार मे चारित्र-निष्ठ श्रमण कहला लोगे, लेकिन भीतर मे ऐसा करके इस चारित्र-पालन से भी सिवा कर्म-बन्धन के कुछ न कर पाओगे। जहर चाहे खुले आम पिओ या छिपकर वह तो अपना प्रभाव दिखाएगा ही।

महावीर आज के सूत्र मे जिस सत्य की चर्चा कर रहे है, उसका अर्थ है–ऐसे जीना जिसमे प्रवचना न हो। बाहर-भीतर मे दोहरी नीति न हो। मुनि 'समाज क्या कहेगा' यह सोचने के लिए नही बने हो, मुनि बने हो, अपने मन को पढने और समझने के लिए, जीवन की वास्तविकता को आत्मसात् करने के लिए। सयम जीवन मे छिपकर किया जाने वाला कार्य, सिद्धातो का हनन, समाज के साथ नही अपितु अपने साथ धोखा है। इस आत्मप्रवचना को कब तक करते रहोगे ? पेश करो अपनी आवश्यकताओ और समस्याओ को समाज के सामने, वह आज नही तो कल अवश्य स्वीकार करेगा। अगर हमने ऐसा नही किया तो आने वाला कल ऐसा होगा, जब फूल तो रहेगा लेकिन फूल मे भी सडाध होगी। इसलिए स्वय को पूरी तरह खुले-आम पेश करो। चाहे दोष है तो दोष और गुण है तो गुण–किसी को भी पर्दे मे छिपाकर मत रखो। वे लोग कभी भी अशुभ कर्म नही करते है जिनका जीवन

खुली किताब की तरह है। सम्भव है ऐसे करने मे तुम्हे इच्छित परिणाम न मिले, पर भविष्य की उज्ज्वलता को कोई रोक नही पायेगा।

गाधीजी ने अपनी आत्म कथा मे लिखा था कि जहाँ सत्य की चाह और उपासना है, वहाँ परिणाम चाहे हमारी धारणा के अनुसार न निकले, कुछ और ही निकले, परन्तु वह अनिष्ट बुरा नही होता और कभी-कभी तो आशा से भी अधिक अच्छा हो जाता है।

सत्पथ पर चलने के लिए जागरूकता एव विवेक की आवश्यकता है। जब हम धैर्य और विवेक के साथ सत्पथ पर गमन करेगे तब सत्य हमारे अधकार को तिरोहित कर हमे प्रकाशित करेगा। माना कि जीवन मे घोर अधेरा है लेकिन जिनके पास सच्चाई का दिया है वे सब सदैव प्रकाश मे जीते है। जीवन मे साहस और आत्मविश्वास बटोरें, अगर ऐसा न किया तो सब कुछ करके भी अधेरे मे रह जाओगे।

हम अपना विकास स्वय करे और इस चितन के साथ कि मुझे अपने व्यक्तित्व का विकास करना है। अगर इस व्यक्तित्व-विकास मे सत्य का आशीर्वाद साथ लिए चलते रहे, तो महावीर कहते है कि तपश्चर्या और सयम स्वत जीवन मे अवतरित हो जाएगे। रजोहरण से चींटी को बचाना अलग बात है और विचारो से हिंसा को हटाना अलग बात है। अगर विचारो मे हिंसा विद्यमान रहेगी तो तुम चींटी को बचाकर भी चींटी की हत्या करते रहोगे, क्योकि हिंसा का सम्बन्ध व्यवहार से कम, निश्चय से ज्यादा है।

महावीर ने प्रव्रज्या चारित्र-पालन के लिए कम, सत्य के अनुसधान के लिए ग्रहण की थी, क्योकि सत्य को जब तक जाना पहचाना नही जाएगा, सत्य से हम रु-ब-रु नही होगे तब तक हम कैसे ग्राह्य को पहचान पाएगे और कैसे अग्राह्य को। करणीय और अकरणीय का विभाजन कैसे कर पाएगे ? नग्न होकर साधु बन जाना अलग बात है, और अन्तर्मन से निर्दोष हो जाना अलग बात है। बाहर से कपडे हर कोई उतार सकता है, और बाथरूम मे उतारता भी है, लेकिन क्या वहाँ निर्दोष भाव पैदा होता है ? महावीर ने कभी नग्न होने का अभ्यास नही किया। ऐसा नही कि पहले लगोटी पहनी हो और फिर धीरे-धीरे लज्जा त्याग कर उसे छोडा हो। वहाँ जो कुछ हुआ, सहज हुआ। जब घर छोडा था तब सब कुछ छोड दिया था। भीतरी वस्त्र तक न रखा, क्योकि अगर प्रकृति के साथ जीना है तो प्रकृति जैसा ही होना पडेगा।

जैसे ही महावीर निर्वस्त्र हुए, देवो ने उन्हे एक वस्त्र दिया, उन्होने सहजभाव से ग्रहण कर लिया। ब्राह्मण भिखारी ने मॉगा, आधा वस्त्र दे दिया, शेष आधा भी जब कधे से उड गया तो उसे भी छोड दिया और इस तरह महावीर सहजतया निर्वस्त्र हो गये।

महावीर सत्य के पक्षधर है और हम चौबीसो घटे असत्य मे जी रहे है। अगर हमारे रक्त की जॉच कराइ जाए तो जैसे 'सूगर' की बीमारी का पता चलता है वैसे ही असत्य की बीमारी का पता चलेगा, क्योकि यह रोग हर किसी के साथ जुडा हुआ है। हमारे खून की हर बूद मे झूठ के कण बिखरे हुए है। हम बिना कारण झूठ बोलते है। मै देखता हूँ लोग यात्रा करते है 'कालका एक्सप्रेस' से और कहेगे 'राजधानी एक्सप्रेस' से आए है। खाएगे सूखी रोटी और कहेगे मालपूआ खाकर आया हूँ। अपनी इज्जत को बढ़ाने के लिए बेइमानी का सहारा लेकर औरो की नजर मे तो ऊचे उठ जाओगे, परन्तु एक दिन ऐसा आएगा कि स्वय की नजरो मे ही गिर जाओगे।

सम्भव है, सच बोलने से हमारा पद हमारे हाथ से छूट जाए, हमारी प्रतिष्ठा मे आच आ जाए या पैसा छिटक जाए। लेकिन ऐसा करके हम अपने आप को बचाए रखेंगे। कही ऐसा न हो कि पूजी, पद और प्रतिष्ठा को बचाने के चक्कर मे हम स्वय ही दिग्भ्रमित हो जाए। अगर इन सबको खोकर हमने स्वय को बचाए रखा, अपने ईमान और धर्म को बचाए रखा तो यह जीवन का अभिनिष्क्रमण होगा, क्योकि महावीर सत्य मे सयम स्वीकार करते है, तपस्या स्वीकार करते है, धर्म के समस्त गुण स्वीकार करते है। सम्भव है सत्य के मार्ग मे काटे ही काटे मिले, पर काटो से गुजरकर ही तो फूलो तक पहुँचा जाता है। सम्भव है तुम्हे बार-बार यह दिखाई दे कि दुनिया मे विजय झूठ की हो रही है, पर मेरी यह बात सदा याद रखना कि अन्तिम विजय सदा सत्य की ही होती है।

मैने सुना है अर्हत् बुद्ध जेतवन मे चातुर्मास कर रहे थे। अर्हत् के अमृत सन्देशो का श्रोताओ के माध्यम से ऐसा प्रचार हुआ कि हजारो की भीड उनका प्रवचन सुनने उमड पडी। अर्हत का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा था। जो वस्तुत धर्मानुरागी थे, वे अतीव प्रफुल्लित थे। पर कुछ कुटिल जनो को जो नगर के धर्म-गुरु कहलाते थे, अर्हत की ख्याति रास नही आयी। उनके प्राणो मे अर्हत की नगर मे उपस्थिति

काटे-सी चुभने लगी और वे ऐसी योजना बनाने लगे ताकि जनता मे अर्हत के प्रति घृणा पैदा हो जाए। उन्होने एक ऐसा षडयत्र रचा कि अर्हत मुह दिखाने लायक भी न रहे। उन्होने अर्हत की ही एक शिष्या परिव्राजिका सुन्दरी को धन का लोभ देकर अपने षडयत्र मे सम्मिलित किया। सुन्दरी उस युग की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी, लेकिन भगवान के उपदेशो से प्रभावित होकर उनकी शिष्या बन गयी।

कहते है भाई-भाई को नीचे गिराता है, लोहा-लोहे को काटता है वैसे ही ससार मे गुरुओ की निन्दा भी शिष्यो से ही होती है। और तो और क्राइस्ट को उन्ही के शिष्य जुडास ने सिर्फ तीस रुपये मे बेच दिया था। कुछ लोग ऐसे होते है जिन्हे गुरु के महत्त्व का ज्ञान नही होता, वे शिष्य तो बन जाते है, किन्तु कचन और कामिनी के आकर्षण से मुक्त नही हो पाते और गुरु को दगा तक दे बैठते है। ओशो रजनीश के अमेरिका स्थित रजनीशपुरम् के विनाश का मूल कारण स्वय ओशो या उनके सिद्धात इतने नही थे, अगर एक महिला, जो उनकी प्रथम शिष्या थी, उन्हे धोखा न देती तो वह सब कुछ नही होता जो हुआ। जब-जब भी महावीर जैसे महापुरुष पैदा हुए है, तब-तब गोशालक जैसो ने शिष्य बनकर धोखा किया।

परिव्राजिका सुन्दरी धन के लोभ मे गुरुद्रोह कर बैठी। षडयत्रकारी तथाकथित धर्मगुरुओ के सकेत पर सुन्दरी रात मे जैतवन जाती और सुबह जैतवन से लौटकर नगरवासियो को कहती, बुद्ध के आमत्रण पर रात्रि-सुख देने गई थी, वही से वापस लौटी हूँ।

सुगध को फैलाने में समय लगता है, लेकिन दुर्गंध ? इसकी गति तो सुगध से सौ गुनी तेज होती है। सुन्दरी की विकृत चर्चा सारे नगर मे फैल गई। सुन्दरी नगर की श्रेष्ठ सुन्दरी थी। नगर मे सैकडो लोग उसके प्रति आकर्षित भी थे अत उसकी बात लोगो को प्रभावित करने लगी। लोग सोचते, जो दिखने मात्र से हमारे मन को विकृत कर देती है, वह बुद्ध को सदा पास मे रहकर क्या विकृत नही कर पाएगी।

बुद्ध की अपकीर्ति पूरे नगर मे फैल गई। कुछ दिन पहले जहॉ प्रवचन मे हजारो-हजार लोग पहुँचते थे, वहॉ गिने-चुने दस-बीस लोग बचे। शिष्य कहते, प्रभु आप इस मिथ्या आरोप का खडन क्यो नही करते ? भगवान मुस्कुराते, कहते, सत्य के लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता नही होती। भगवान को सत्य पर अटूट श्रद्धा थी। वे

जानते थे सत्य अगर है तो जीतेगा, आज नही तो कल जीतेगा।

समय बीतता गया और बुद्ध की अपकीर्ति न केवल नगर मे, अपितु आसपास के गावो मे भी फैल गई। दुनिया का तो स्वभाव है, तुम अगर किसी महिला को शीलवती घोषित करोगे तो लोग विश्वास नही करेंगे। लेकिन किसी के आचरण पर प्रश्नचिह्न लगाओगे तो लोग तुम्हारी हर बात मानने को तैयार हो जायेगे। अगर यही से बाहर जाकर किसी को कहोगे कि मैने महाराज के पास अलौकिक शक्ति देखी तो लोग मानने को तैयार नहीं होगे। और अगर यह कहोगे कि मैने महाराज को अमुक गलत आचरण करते देखा तो सब हाँ मे हाँ मिलाने लग जाएगे। और बुद्ध के साथ भी यही हुआ। और तो और स्वय बुद्ध के अनुयायी भी सुन्दरी की बात पर विश्वास करने लगे। लेकिन इतना सब कुछ होने पर भी भगवान का मौन नही टूटा। वे इस विषय मे किसी भी प्रकार का खडन करने के लिए तैयार नही हुए। भगवान की अपूर्व सहिष्णुता एव तितिक्षा देख सुन्दरी को अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ। भला कोई आदमी पहाड से सिर टकरायेगा तो पहाड का क्या बिगडेगा।

तथागत की शाति को अचल देख विरोधियो ने नए षडयत्र का सूत्रपात किया और सुन्दरी की हत्या करवाई। नगर मे नई चर्चा प्रारम्भ हो गई, 'तथागत ने सुन्दरी की हत्या करवा दी है।' अब तो लोग बुद्ध के प्रति आक्रोश जतलाने लगे। जनता बुद्ध के विरोध मे खडी हो गई और उन तथाकथित धर्मगुरुओ ने मौके का लाभ उठाया। वे सब इकट्ठे होकर सम्राट के पास गये, कहा 'राजन् ,! सुन्दरी जो बुद्ध की अकशायिनी थी, आजकल दिखाई नही देती है, लगता है लोकनिन्दा के भय से बुद्ध ने उसकी हत्या करवा दी है।'

सम्राट के आदेश पर जैतवन घेर लिया गया। सैनिको ने उसकी व्यापक छानबीन की। अर्हत् बुद्ध की कुटिया के पीछे, फूलो के ढेर मे सुन्दरी का शव मिला। बुद्ध से कहा गया, 'तुम अर्हत् भगवान,बुद्ध और प्रज्ञावान कहलाते हो, अपने प्रवचनो मे बाते तो ऊची-ऊची करते हो और आचरण इतना निम्न।'

बुद्ध तब भी मौन रहे। झूठ के लिए सफाई पेश करनी पडती है, अगर सत्य के लिए भी ऐसा ही किया गया तो सत्य झूठ के हाथो नीलाम हो जायेगा। बुद्ध की कुटिया के पास सुन्दरी का शव मिलने

से, उनकी रही सही प्रतिष्ठा भी रसातल मे चली गई। भिक्षुओ को आहार मिलना मुश्किल हो गया। और तो और गलियो से गुजरना भी मुश्किल हो गया। भिक्षु जहाँ से गुजरते लोग कहते, ये हत्यारे बुद्ध के शिष्य है, ये हत्यारे गौतम के शिष्य है। बुद्ध की ओर से प्रतिकार न होने के कारण हालत और बिगड गई। लोग बुद्ध के शिष्यो को घर की ओर आता देख दरवाजे बद करने लगे।

हालत बिगडती देख एक दिन सारे शिष्य एकत्रित होकर बुद्ध के पास पहुँचे और निवेदन किया, 'भगवन्! पानी सिर के ऊपर से बहने लग गया है, अगर अब आपने प्रतिकार नही किया तो हम सब लोगो का जीवन भी खतरे मे पड जायेगा।'

तब तथागत मुस्कुराये और धीमी आवाज मे कहा, 'शिष्यो! मौन रहो। असत्य सदा असत्य ही रहेगा, सत्य की विजय अवश्य होगी। सभव है कुछ दिनो के लिए असत्य सिहासन पर बैठकर राज कर ले, लेकिन अत मे मुह के बल उसी को गिरना पडेगा। मेरे प्यारे शिष्यो, तुम धैर्य रखो और अपनी श्रद्धा की अग्नि परीक्षा होने दो। यह कसौटी का अवसर है, इसके पश्चात जो श्रद्धा निखरेगी वह ज्योतिर्मय होगी।

झूठ अपनी पराकाष्ठा को छू चुकी थी। समय ने पासा पलटा, अब बारी सत्य के विजय की थी। एक दिन मदिरालय मे वे गुडे शराब पी रहे थे, जिन्होने धर्म-गुरुओ के निर्देश पर सुदरी की हत्या की थी। सयोग से कुछ सैनिक भी वहाँ थे, हत्यारे नशे मे चूर थे। एक दूजे से लडते-झगडते उन्होने सुन्दरी की हत्या और धर्मगुरुओ के षडयत्र का पर्दाफाश कर दिया। सैनिको ने तत्काल उन्हे बदी बना लिया। राजसभा मे उन्होने सपूर्ण घटना बताई कि किस प्रकार उन्होने हत्या की और परिव्राजिका सुन्दरी का शव फूलो के ढेर मे छिपाया। बात विद्युत् गति से नगर मे फैल गई। तथाकथित धर्मगुरु निन्दित हुए और बुद्ध प्रशसित। स्वय सम्राट् ने क्षमा मागी। तब अर्हत ने सम्राट् से कहा, 'राजन्! मैंने पहले ही कहा था, सत्य अपनी रक्षा करने मे स्वय समर्थ है।'

नीत्से ने मानव जाति का गहराई से अध्ययन किया। उन्होने मनुष्य के भीतर की एक-एक ग्रन्थि को पकडा। और अगर नीत्से को पूछो, तो वे यही रहस्योद्घाटन करेंगे कि मनुष्य झूठ के बिना जी नही सकता। झूठ हमारे रोम-रोम मे समाया हुआ है। सत्य सीखने के लिए गुरु की शरण मे जाना पडता है, लेकिन झूठ आदमी घर बैठे सीख लेता है।

सद्प्रवत्तियो को प्रवेश कराने के लिए प्रयास करना पडता है लेकिन असद् प्रवृत्तियाँ सहज मे ही उत्पन्न हो जाती हैं। दुर्गंध सहज पैदा हो जाती है और सुगध के लिए प्रयास करना पडता है। शायद दुनिया का कोई शास्त्र, या कोई चिन्तक यह नही कहता है कि झूठ बोलना चाहिए। बचपन से अब तक सैकडों किताबे पढी होगी। सभी मे सच्चाई की बाते लिखी है, ईमान से जीने का आदेश दिया गया है, लेकिन हमारे व्यक्तित्त्व मे किताबो की अच्छी बाते तो नही उतर पाई, हाँ झूठ और बेईमानी अवश्य हमारी पिछलग्गू हैं। हम पढ़ते तो अच्छी बाते है और कहते भी अच्छी बाते है लेकिन जीवन इसके विपरीत चलता है। ईमानदारी के लिए परिश्रम करना पडता है और बेईमानी बिना किसी प्रयास के आराम से कर लेते है।

कहने मे भले ही कह दे कि हमे अहिंसा प्रिय है, अचौर्य प्रिय है, सत्य प्रिय है किन्तु यह वास्तविकता नही है। क्योकि हमारी जीवन शैली और होती है, और अभिव्यक्ति की शैली और। उपदेश ऊचाई का और आचरण नीचाई का। यदि मै प्रवचन का विषय रखू कि 'सत्य कैसे बोलें' तो प्रवचन मे गिने-चुने लोग आयेगे किन्तु यदि मै प्रवचन का विषय रखू 'झूठ बोलना, चोरी करना कैसे सीखे' तो यहाँ पैर रखने को जगह नही मिलेगी। 'आयकर कैसे चुकाएँ' अगर इस विषय पर सगोष्ठि आयोजित की जाए तो लोग गिने-चुने आयेगे और 'आयकर कैसे बचाए' इस विषय पर सगोष्ठी रखी जाए तो लोग उमड पडेंगे। जो लोग हरिश्चन्द्र की सत्य कथाएँ पढते-सुनाते है उन लोगो को जरा पूछो कि तुम्हारे जीवन मे सत्य कही आगे-पीछे भी है।

ऐसा ही हुआ एक नगर मे एक पडित जी बाहर से कथा बाचने के लिए बुलाये गये। उन्होने सत्यनारायण की कथा कही। हरिश्चन्द्र की कहानी को इतने मनोरजक रूप मे पेश किया कि सब लोग पडित जी की जय-जयकार करने लगे। रवानगी से पूर्व उन्होने व्यवस्थापको से आने-जाने का प्रथम श्रेणी का किराया मागा। उनका एक मित्र जो उनके साथ आया था, पडित जी के द्वारा हरिश्चन्द्र की कथा सुनकर प्रभावित भी बहुत हुआ था। उसने पूछा—पडित जी! हम आये तो द्वितीय श्रेणी से है फिर किराया प्रथम श्रेणी का क्यो? पडित जी मुस्कुराये और कहने लगे, लग्ता है मेरी हरिश्चन्द्र की कथा का नशा तुम पर भी सवार हो गया। अरे! ये कहानियाँ तो सतयुग की है, हम कलियुग मे जी रहे है। अगर प्रथम श्रेणी का किराया न लिया तो हम

बच्चो को क्या खिलायेगे ।

सही मे कलियुग है । नीचे से लेकर ऊपर तक झूठ ही झूठ समाई है । चाहे वक्ता हो या श्रोता–बाते ईमान की करेगे और काम बेईमानी का । जिस मच पर खडे होकर अहिंसा का भाषण देगे उसी के नीचे बम की फैक्टरियॉ चलायेगे । यही जीवन का दोहरापन है । आज मानव मन की यही प्रवृत्ति है ।

लोग कहते है, सत्य बहुत कडवा होता है, हर कोई हजम नही कर पाता । मुझे यह बात नही जचती अगर सत्य कडवा होगा तो मधुर क्या होगा ? हमने अपनी कठोर वाणी से सत्य की दुर्दशा कर डाली । इस बात मे भी असत्य का मिश्रण है कि हमसे झूठ सहन नही होता । अगर तुम सत्य सुनना चाहते हो, तो सत्य बोलना सीखो । सत्य सदैव मधुर होता है । बशर्ते अभिव्यक्त करने की शैली हमारे पास हो । व्यास कहा करते थे, 'सत्य ब्रूयात, प्रिय ब्रूयात', सत्य भी ऐसा बोलो जिसमे मधुरता का मिश्रण हो । सोचो, बोलने से पहले सोचो, तुम जिस पर सत्य की मोहर लगा रहे हो, क्या वह सत्य है ? सत्य मात्र वह नही है जो तुम कह रहे हो । सत्य की सभावना वहॉ भी है, जो तुम्हे कुछ कह रहा है । हम सत्याग्रही बनने के बजाय सत्यग्राही बने । मै कहता हूॅ वह सत्य नही है, जो सत्य है वह मै कहता हूॅ । अपने क्रोध और अहकार की तुष्टि के लिए कहा गया सत्य भी भला सत्य कैसे हो सकता है ? हम सत्य-भाषण नही करते है, अपने अहकार का पोषण करते है। प्रत्येक सत्य को समझाया जा सकता है, बशर्ते हमारे पास समझाने की शैली हो ।

सत्य हमेशा सामने कहा जाता है । पीठ पीछे जो कहा जाता है, उसे मै सत्य नही, निंदा कहता हूॅ । सत्य और निंदा मे फर्क है । हम लोग निंदा की भाषा तो जानते-समझते है, लेकिन सत्य की भाषा हमने नही सीखी । हमारी नाइन्साफी यह है कि जब तक सत्य से हमारे स्वार्थो की पूर्ति होती है, तब तक हम सत्य बोलते है । किन्तु सत्य से जब हमारे स्वार्थो की पूर्ति नही होती तब हम झूठ का सहारा लेना शुरू कर देते है । जीवन मे कुछ नैतिक कर्त्तव्य होते है, उन्हे सफल करना हमारा दायित्व है । लेकिन अगर हम अहकार की पुष्टि और स्वार्थ की पूर्ति के लिए, अपने नैतिक कर्त्तव्यो से पीछे खिसकते है, तो यह आत्म-प्रवचना नही तो और क्या है ?

हम कहते है 'सत्यमेव जयते', 'सत्य शिव सुन्दरम्' ,पता नहीं ऐसी कितनी अच्छी-अच्छी बाते हम कहा करते है, लेकिन जीवन मे इस वाक्य को हम पूरी तरह से बदल देते है। जबान कहती है 'सत्यमेव जयते' और हमारा जीवन कहता है 'असत्यमेव जयते'। गीत गुन-गुनाये जाते है 'सत्य शिव सुन्दरम्' के और हमारा आचरण कहता है 'असत्य शिव सुन्दरम्।' इसलिए भगवान कहते है—सत्य को पहचानो। सत्य को पहचानने बाद जो कुछ किया जायेगा वह कल्याणकारी होगा, वह श्रेयस्कर होगा अभी तक हम दूसरो के कृत्य का अनुसरण करते आये है। हमने अभी तक अपने जीवन की तराजु मे सत्य को नही तौला है, हम भेड चाल से उबरकर बाहर आयें और जीवन के सत्य का अनुसधान करे।

महावीर ने कहा,'सत्य मे सयम का वास है। त्याग और तप का वास है, यदि हम मात्र परपराओ का निर्वाह करते रहेगे तो महावीर के अनुयायी तो कहलायेगे, पर महावीर नही बन पाएगे। हम राग मे राग छेडते रहेगे, धुन मे धुन मिलाते रहेगे लेकिन इतना सब कुछ करने मे भी भीतर की वीणा मे झकार पैदा नही हो पाएगी।

मुझे याद है एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन कही जा रहे थे। मार्ग मे उनका मित्र मिला, उसने कहा 'मुल्ला कहाँ, जा रहे हो ? नसरुद्दीन ने कहा, 'क्या तुम्हे पता नही नगर मे शास्त्रीय सगीत का आयोजन हो रहा है, उसे ही सुनने जा रहा हूँ।' मित्र ने कहा, 'मुल्ला तुम्हे ! शास्त्रीय सगीत का न तो ज्ञान है, न रुचि।' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा,'आस-पास के सभी पडोसी शास्त्रीय सगीत सुनने जा रहे है, मैं नही गया तो सभी पडोसी कहेगे कि मुल्ला को सगीत का ज्ञान नही है। मेरा जाना तो अनिवार्य है।' नसरुद्दीन सगीत सभा मे पहुँच गये। उन्हे शास्त्रीय सगीत का ज्ञान तो था ही नही, सुनकर बोले, 'ये बदा रोता क्यो है ?' और मुल्ला ने भी रोना प्रारभ कर दिया। आसपास बैठे श्रोताओ ने कहा 'मुल्ला ! सगीत-सभा मे ये विघ्न क्यो उत्पन्न करते हो।' मुल्ला ने कहा, 'तुम्हे शास्त्रीय सगीत का ज्ञान कहॉ ? मै धुन मे धुन मिला रहा हूँ।' हम भी ऐसे ही परम्पराओ का बोझ ढो रहे है। परम्परा के नाम पर धुन मे धुन मिला रहे है। अनुकरण के पूर्व भी सत्य की खोज अनिवार्य है।

महावीर तो यहॉ तक कहते है, तुम सत्य और असत्य के भेद को

जानो, जो सम्यक मार्ग मिले उसे स्वीकार करो। अन्यथा किसी जन्म मे ईसाई धर्म से, किसी जन्म मे मुस्लिम धर्म से, किसी जन्म मे जैन-धर्म से बधे रहोगे। हर जन्म के पश्चात चोला बदलता रहेगा। हमे धर्म का नही जीवन का परिवर्तन करना है। जीवन के परिवर्तन का अर्थ है, व्यक्ति सत्य का स्वय अनुसधान करे। सत्य की खोज स्वय करे। सत्य मात्र वाणी तक न रहे, हृदय मे उतरे। हम सत्य के हस्ताक्षर भी वाणी से करते आये है। हमे सत्य को हृदय मे उतारना है और हृदय से उसे प्रकट करना है। जब सत्य हृदय से प्रगट होगा तो वह न परम्परा रहेगा, न झूठ रहेगा, वह रहेगा मात्र सत्य। और फिर जो कदम आगे बढेगा वह सम्यक् होगा। अन्यथा कामनाओ की पूर्ति के लिए, अपनी वासना की पूर्ति के लिए इसान झूठ का सहारा लेता रहेगा। सत्य के दस्तखत केवल जुबान तक ही न हो, हृदय मे भी हो। सत्य के लिए जीवन समर्पित करने वाले ही सत्य को पा सकते है।

लोग शिकायत करते है, अपने मन की चचलता के बारे मे। उनकी शिकायत भी वाजिब है और मन की चचलता भी। पूछते है मुझसे कि इस चचलता को शात करने की तरकीब बताइए। इन सब लोगो के लिए कोई तरकीब नही हो सकती जो चौबीसो घटे झूठ मे जी रहे है, बेईमानी और चोरी मे जी रहे है। अपने भीतर इतनी झूठी बाते पाल रखी है कि इन झूठी बातो के जर्रे-जर्रे की जाच पडताल करवानी होगी। हम ध्यान कर रहे है, मालाए जप रहे है, पूजा प्रार्थनाए कर रहे है, लेकिन अपने ईमान को सुरक्षित नही रख पा रहे है, तो यह सब केवल ऊपरी लीपापोती होगी, अतरग मे परिवर्तन की कोई रेखा नही उभर पाएगी। स्वय जैसे हो वैसा स्वीकार करो।

लोग दान देते है, अगर उनसे जाकर पूछो कि इनमे कौन ऐसा है जो दान के लिए दान देता हो, जो इसलिए देता हो, क्योकि उसे आवश्यकता से अधिक मिला है। लोग दान देने के लिए नही, अपितु पाने के लिए करते है। यह सोचकर देते है कि आज एक देंगे तो कल दस मिलेगा। अगर इन सब लोगो को बता दिया जाए कि देने से कुछ नही मिलेगा तो कोई कुछ नही देगा। सब लोग देना बद कर देगे। ये दान देते है, लेकिन पुण्योपार्जन की कामना के साथ या ऑख की शर्म के कारण। दुकान पर समाज के पॉच प्रतिष्ठित लोग आ गए, दान मागा, ना कहना नामुमकिन हो गया। इच्छा हो या न हो, दान तो देना ही पडेगा।

ऐसा ही हुआ कुछ लोगो ने मिलकर निर्णय किया कि नगर मे धर्मशाला नही है, एक धर्मशाला बनाएगे। उन्होने एक सस्था बनाली। सारे शहर से चदा एकत्रित किया, लेकिन दो लाख रुपये भी एकत्रित नही हो पाए। अत मे किसी ने सुझाव दिया कि शहर के आयकर आयुक्त को इस सस्था का अध्यक्ष बना लो फिर देखते है कि कौन दान नही देता।

ऐसा ही हुआ, आयकर आयुक्त अध्यक्ष बना दिए गए। लोग उन्हे साथ लेकर मुश्किल से २५-३० दुकानो मे गये और धर्मशाला के लिए २० लाख एकत्रित हो गये।

लोग दान के कारण दान नही देते, अपितु फस जाने के कारण देते है। देने मे, देने की भावना कम दूसरे की आँख के शर्म का प्रभाव ज्यादा हो जाता है। इसलिए भिखारी कभी एकात मे भीख नही मागता, दस लोगो के बीच मागता है, क्योकि वह जानता है कि धनपति ५० पैसे के लिए लोगो के बीच स्वय को कजूस सिद्ध नही करेगा। धर्म-कर्म-दया-दान—सब कुछ तो आज दिखावे मात्र के लिए रह गए है।

यह हमारी विडम्बना है कि हम जीवन की वास्तविकता से हटकर दिखावेपन मे ज्यादा विश्वास करने लगे है। दुनिया मे जितने भी अत्याचार और अनाचार होते है, मूल कारण मनुष्य की वे दुष्प्रवृत्तिया है जिनके चलते वह ऐसा करने के लिए आकर्षित होता है। एक झोपडी मे रहने वाला व्यक्ति अपनी नजरे सदा उसी वगले की ओर केन्द्रित रखता है जहाँ सुख-सुविधाओ का सैलाव उमड रहा है। वह देख रहा है कि उसके पैरो मे एक फटी-पुरानी चप्पल भी नही है और पडौसी के वगले के वाहर चार-चार कारे खडी है। उसे खाने के लिए दो जून रोटी भी नसीव मे नही है, वही पडौसी के यहॉ रोज मिठाइयाँ खाई जा रही है। वह दिन भी उसे याद है जव उसकी विटिया की शादी के लिए आए हुये वारातियो को मिठाई खिलाने के लिए उसने दो हजार रुपये अपनी पत्नी का मगलसूत्र गिरवी रख कर पाये थे, वही पडोसी की विटिया की शादी पर लाखो रुपये तो सिर्फ मौज-मस्ती और मदिरा पर ही उडा दिए गये थे। ऐसा सव कुछ होने पर व्यक्ति किसी अनुचित रीति से भी धनोपार्जन का उपाय करता है। जिन्हे हम सामाजिक वुराइयाँ कहते हैं वे सब इन्हीं रीति-नीति से पनपती है।

आज शादी-विवाह मे अथवा पुत्र-पुत्री के जन्म-दिन पर जो किया जा

रहा है, सिवाय दिखावे के और क्या है, चाहे धार्मिक कृत्य हो या गृहस्थमूलक—जो कुछ किया जा रहा है, इसलिए क्योकि पडोसी ने भी वैसा किया है। पडोस के गॉव मे जब मदिर की प्राण-प्रतिष्ठा हुई थी तब हेलीकाप्टर से पुष्प वर्षा की गई थी—आज हमारे गॉव मे प्रतिष्ठा है, हम भी इसलिए हेलीकाप्टर से फूल बरसाना चाहते है, क्योकि ऐसा न करने पर हमारी नाक कटने का भय है। हमारे लिए यह बात गौण है कि पुत्री के विवाह मे खर्च करने हेतु हमारा सामर्थ्य कितना है, खासबात यह हो जाती है कि पडोसी ने कितना व्यय किया था। पडोसी यानी हमारा दुश्मन। हम इसलिए पडोसी से ज्यादा खर्च करना चाहेगे ताकि उसकी नजरे हमारे सामने झुकी रहे। पडोसी को झुकाने के लिए या उसे नीचा दिखाने के लिए किया जाने वाला फिजूल खर्च हमारी सकुचित मानसिकता का प्रदर्शन है।

पता है, दहेज देने की परम्परा क्यो शुरू हुई ? किसी ने अपनी पुत्री को विवाह पर दो साडियॉ दी, उसके पडोसी ने उसे नीचा दिखाने के लिए तीन दी, और इसी प्रकार प्रतिस्पर्धा मे यह क्रम बढता गया। अभी कुछ दिन पूर्व एक महाशय अपनी पत्नी को साथ लेकर मेरे पास आए, कहने लगे, महाराज जी ! इसे समझाइये, मेरी पुत्री के ससुराल वाले कहते है कि हमे दहेज मे कुछ नही चाहिए परन्तु ये अडी है कि मै तो दहेज मे ५१ साडियॉ ही दूगी। मैने अपनी नजरे उस बहन की ओर की तो उसने कहा, महाराज जी ! ये फिजूल मे अपनी बात पर अडे है। मेरे पडोसी की पुत्री का जब विवाह हुआ था तब उसने ४१ साडियॉ दी थी, अगर मैने दो चार और बढाकर न दी तो मेरी प्रतिष्ठा पर चोट नही लगेगी !

हम जो कुछ दे रहे है, लडकी को नही अपने अहकार को दे रहे है। इसलिए दे रहे है कि अगर न दिया तो अहकार पर चोट लगेगी। व्यक्ति प्रत्येक चोट को बर्दाश्त कर सकता है, परन्तु अपने अहकार की चोट को नही।

हम जो कुछ कर रहे है देखा देखी कर रहे है। जिन आकाक्षाओ के चलते हम दु खी और विक्षिप्त हो रहे है, वे हमारी नही है, पडोसी के द्वारा पैदा की गई है, उधार है, बासी है। पहले तुम्हारे मन मे, घर मे कार लाने की आकाक्षा नही थी और न ही आवश्यकता। लेकिन आज आकाक्षा कर रहे हो, क्योकि तुम्हारे इर्द-गिर्द दोनो ओर पडोसियो

के घर मे कारे है। हम ऐश्वर्य इसलिये पाना चाहते है, क्योकि पडोसी का ऐश्वर्य हमे खटक रहा है। गहने खरीदेगे—भले ही बच्चो को भूखा रखना पडे। कार खरीदना चाहेगे—भले ही बच्चो को पढा न पाए।

धार्मिक कृत्यो मे भी इसी आडम्बर ने प्रवेश किया है। 'अमुक' महाराज का नगर मे प्रवेश हुआ तो उनकी शोभा यात्रा मे पॉच हाथी थे, तो 'ये' महाराज इसलिये कार्यकर्ताओ का उलाहना दे रहे है, क्योकि उनके नगर-प्रवेश के दौरान मात्र दो ही हाथी थे। यह प्रतिस्पर्धा है और यही प्रतिस्पर्धा समाज मे ईर्ष्या, वैमनस्य और मूल्य-हीनता की गदगी फैलाती है।

'अमुक' महिला ने सोलह व्रत किये। उसके पीहर वालो ने इसके उपलक्ष्य मे चार सोने की चूडिया दीं। पडोस की महिला ने भी सोलह उपवास किये थे, लेकिन उसकी ननद इसलिये उस पर ताना कस रही थी, क्योकि उसके पीहर से एक अँगुठी तक नही आई थी। सास कहने लगी, बहु तुम्हारे पीहर वालो ने तो हमारी नाक कटा दी। देखो। पडोसी की बहु ने सोलह उपवास किये, पीहर से चार सोने की चूडिया आई है, पर तुम्हारे ?

यह हमारे समाज का दुर्भाग्य है कि हम लोगो ने धार्मिक अनुष्ठानो मे भी इतना जबर्दस्त आडम्बर प्रारम्भ कर दिया है कि निर्धन व्यक्ति उस धर्म से जुडा रहने पर हीन भावना का शिकार होता है। यह अतिशयोक्ति नही वरन् वास्तविकता है कि बहुत सी निर्धन महिलाएँ इसलिए लम्बी तपश्चर्या नही कर पाती है, क्योकि आर्थिक दृष्टि से उनका परिवार इतना सम्पन्न नही है कि उसके लिए शोभा-यात्रा निकाली जा सके, स्वामी-वात्सल्य किया जा सके और महापूजन करवाया जा सके। अगर यह सुबह कुछ नही किया जाता है तो नाक कटने का भय है।

कल की बात है एक महिला मुझसे कह रही थी, मै मासक्षमण (तीस उपवास) करना चाहती हूँ पर । मैने पूछा दिक्कत क्या है ? कहने लगी, 'मेरे पति रेलवे मे क्लर्क है, वे स्वामी वात्सल्य (जीमणवारी) नही करा पाएगे, परिवार वालो को 'प्रभावना' नही दे पाएगे—ऐसी स्थिति मे मै लम्बी तपस्या कैसे कर सकती हूँ ?'

मै नही समझ पा रहा हूँ कि तपस्या हम इच्छाओ के नियमन के लिए करते है या अपने वैभव प्रदर्शन के लिए। अगर समाज मे ऐसा

ही सब कुछ चलता रहा तो आने वाला कल ऐसा होगा, जब धर्म के द्वार मात्र पूँजीपतियो के लिए खुले रहेगे । इसलिए महावीर कहते है कि 'सत्य मे तप का वास है ।'

आखिर सत्य क्या है ? क्योकि किसी का सत्य किसी के काम नही आया । दुनिया मे जितने महापुरुष हुए, सभी ने 'सत्य' को ढूँढने मे ही अपनी साधना का उपयोग किया । आप जानना चाहते है कि 'सत्य' क्या है ? इसका कोई जवाब न होगा । यह बताया जा सकता है कि 'सत्य' को कैसे पाया जाए, क्योकि सत्य को हमेशा स्वय मे खोजना होता है, उसे कोई दूसरा नही बता सकता और दूसरे का बताया हुआ सत्य कभी सत्य नही होगा, क्योकि उसमे हम बार-बार प्रश्नचिह्न खडा करते रहेगे । तब 'सत्य' भी सशय हो जाता जब उसमे प्रश्न चिह्न खडे हो जाते है । इसलिए सत्य का अनुभव किया जा सकता है—समझाया नही जा सकता ।

सत्य क्या है ? सम्भव है इस प्रश्न का उत्तर दुनिया मे तुम्हे, सिवाय तुम्हारे कोई न दे पाएगा । अगर किसी को पूछने से ही सत्य ज्ञात हो जाता या शास्त्रो के सदर्भो मे मिल जाता तो महावीर और बुद्ध सत्य की खोज मे घर परिवार त्याग कर अनजान जगल मे न जाते । सत्य का न तो उपदेश होता है और न ही शास्त्र । जैसे प्रेम का को शास्त्र नही होता, विधिवत् प्रशिक्षण नही होता वैसे ही सत्य का कोई शिक्षा-शास्त्र नही होता । प्रशिक्षित सत्य भला सत्य रह भी कैसे पाएगा ।

हम सत्य को खोजने मे भी कतराते है और सोचते है कि पहले यह पता लग जाए कि सत्य क्या है, तत्पश्चात् तलाश करे । मुझे हसी आती है लोगो की बचकानी बातों पर । अगर यह ज्ञात हो गया कि सत्य क्या है ? तो फिर तलाश का प्रयोजन ही क्या ? एक बात तय है कि सत्य कभी तर्क मे पैदा नही होता, अपितु श्रद्धा मे पैदा होता है। सत्य को आत्मसात करने के लिए अज्ञात मे भी प्रवेश करना पडेगा, अधेरे मे भी जाना पडेगा और अपरिचित से भी मैत्री करनी पडेगी । इसलिए यह मत पूछो कि सत्य क्या है ? यह पूछो कि सत्य को पाने का मार्ग क्या है ? सत्य कोई सिद्धात नही है, जिसे समझाया जा सके यह तो अनुभूति है । जीवन की जीवन्त अनुभूति, इसलिए इसे जीवन से तो प्रमाणित किया ज़ा सकता है, शब्दो से नही ।

कहते है, यीशु जब सूली पर लटकने जा रहे थे तो सूली लगाने से

पूर्व रोमन गवर्नर पाटियस पायलट ने पूछा कि इतना बता दो कि सत्य क्या है ? यीशु जो जीवन भर लोगो को उपदेश देते रहे, गवर्नर के प्रश्न पर चुप हो गये, पायलट की ओर देखा लेकिन जवाब न दिया और बिना कुछ कहे ही सूली पर चढ गए, क्योकि इस प्रश्न का उत्तर हो ही नही सकता। दुनिया मे कुछ तत्त्व ऐसे होते है जिन्हे मात्र समझा जा सकता है कहा नही जा सकता। कोई पूछे पानी कैसे बना ? जवाब दिया जा सकता है कि हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से पानी बना। हाइड्रोजन कैसे बना ? जवाब होगा कि न्यूट्रान, इलेक्ट्रान और पाजिट्रान—तीनो के सम्मिश्रण से हाइड्रोजन बना। अगर विज्ञान से पूछा जाए कि 'न्यूट्रान' कैसे बना तो क्या कोई वैज्ञानिक इसका जबाब दे पाएगा ? नही, यह नामुमकिन है।

मैने सुना है, जापान के सम्राट ने झेन फकीर लिग शू को राजमहल मे प्रवचन के लिए आमन्त्रित किया। निमत्रण राजा का था, अत लिग शू पहुँच गये। सम्राट ने खडे होकर प्रार्थना की, 'सत्य क्या है' विषय पर अपना उद्‌बोधन दे। कहते है लिग शू मच पर पहुॅचे और सामने रखी टेबल पर हाथ से प्रहार किया, जोर की आवाज हुई और सन्नाटा छा गया। सब लोग उत्सुक होकर बैठ गये, स्वय सम्राट भी कि पता नही लिग शू अब अपना क्या वक्तव्य देगे ? लिग शू कुछ क्षण मच पर खडे रहे और सन्नाटे को तोडते हुए कहा, 'बस प्रवचन पूरा हो गया।' वे मच से उतरे सीधे बाहर चले गये। सम्राट ने वजीरो से कहा, यह कैसा प्रवचन। लिग शू ने तो मेरे प्रश्न का जवाब तक न दिया।

यह प्रश्न है भी ऐसा जिसका जवाब देना मुश्किल है। अगर कोई समझने वाला हो तो लिग शू उस मौन मे बहुत कुछ कह गये, क्योकि जिस बात को वाणी से नही कहा जा सकता वह मौन से मुखरित होती है। कहते है' जब लिग शू मरणशय्या पर थे तो समस्त शिष्य इकट्ठे हो गये। उन्होने जिदगी मे हजारो बार लिग शू से यह प्रश्न किया था कि सत्य क्या है ? लेकिन कोई जबाब न मिला था। शिष्यो ने सोचा कि लिग शू अभी 'निर्वाण' के करीब है, शायद जाने के पूर्व कुछ कह जाए। सभी ने एकत्रित होकर लिग शू से कहा कि सद्‌गुरु। हम आपसे जीवन का अतिम प्रश्न पूछना चाहते है। लिग शू ने कहा, पूछो। शिष्यों ने पूछा, 'सत्य क्या है ?' कहते है प्रश्न सुनते ही लिग शू ने अपनी आँखे मूद ली, सन्नाटा छा गया, उनके इस व्यवहार से सभी ''ाश्चर्यचकित थे। लेकिन लिग शू 'चुप' ही विदा हो गये, ऑखे नही

खोली ।

सबमे यह प्रश्न खडा रहा कि 'सत्य क्या है' ? लिग शू के इस सकेत को कोई समझ न पाया–'मै ऑख बद कर रहा हूँ, तुम देख रहे हो–क्या इसके बाद कूछ जानना शेष रह जाता है ?'

लिग शू चले गये । उनके जीते जी भी शिष्य पूछते रहे कि सत्य क्या है और मरने के बाद भी । शायद न केवल लिग शू अपितु कोई भी भगवत् पुरुष अभी तक यह जवाब नही दे पाया कि सत्य क्या है। जड की व्याख्या की जा सकती है, पुद्गल का विवेचन किया जा सकता है, लेकिन चेतना के बारे मे सिर्फ अनुभूति की जा सकती है । अगर शरीर- विज्ञान की पुस्तक देखो तो प्रत्येक अग के सबध मे, प्रत्येक नाडी के बारे मे, प्रत्येक हड्डी के बारे मे सूक्ष्म से सूक्ष्म व्याख्या मिल सकती है लेकिन आत्मा के बारे मे किसी शरीर-विज्ञान मे कोई व्याख्या नही मिल सकती । मकान मे ईट, चूना, पत्थर जो कुछ भी लगा है, सब की व्याख्या की जा सकेगी लेकिन आकाश प्रदेश की कभी कोई व्याख्या नही कर सकेगा । धर्म और अध्यात्म, जन्म-जीवन-मृत्यु, ससार का ऐसा कोई तत्त्व नही है, जिसके बारे कुछ न कहा जा सके लेकिन आत्मा और सत्य–दो ऐसे तत्त्व है जिनकी सिर्फ उपलब्धि और अनुभूति की जा सकती है इसलिए केवल ईसा और लिग शू ही सत्य के मामले मे मौन नही रहे अपितु अब तक कोई भी 'सत्य क्या है' इसका सपूर्ण जवाब नही दे पाया ।

सत्य एक ऐसा तत्त्व है, जहॉ दिशा दर्शन तो सभव है लेकिन मार्गदर्शन नही । सत्य कहकर नही कहा जा सकता है यह तो अनुभव है, अन्तश्चक्षु का । इसलिए इसकी जब-जब भी व्याख्याए की जाएगी, तब-तब परिवेश से व्याख्याए होगी । शकर कहते है जो बाहर से जो ब्रह्म दिखाई देता है वह मिथ्या है, भ्रम है और जो अन्तश्चक्षु से दिखाई देता है वह ब्रह्म है । इसलिए यह मत पूछो कि सत्य क्या है । इसे जानकर कभी उपलब्ध नही किया जा सकेगा । उपलब्धि तब होगी, जब तत्सबधी परिभाषा हमारे हाथ लग जाएगी । हमारे द्वारा यही चूक होती रही है कि जब भी सद्गुरु का सामिप्य मिला हम पूछते रहे कि सत्य क्या है । अगर यह ज्ञान एक दूजे को दिया जा सकता तो हर गुरु शिष्य को यह ज्ञान दे देता और दुनिया में सत्य की खोज के मार्ग अवरुद्ध हो जाते । इसलिए अगर पूछना/जानना चाहते हो तो यह

पूछो/जानो कि सत्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है । एक अधे आदमी को कैसे बता पाओगे कि प्रकाश क्या है ! आज तक कोई भी जन्मान्ध को यह नही बता पाया कि प्रकाश की परिभाषा क्या है ! हाँ, प्रकाश को उपलब्ध कैसे किया जाए, इसके बारे मे सकेत दिया जा सकता है, दिशा दर्शन किया जा सकता है, जानकारी दी जा सकती है। कैसे समझाओगे एक अधे आदमी को प्रकाश की परिभाषा ? तुम कहोगे प्रकाश है । वह कहेगा—अगर है तो अनुभूति कराओ । मेरे पास हाथ है, मै छूकर देखना चाहता हूँ कि प्रकाश क्या है । क्या कभी छू पाओगे प्रकाश को ? यही जबाब दिया जाएगा कि प्रकाश का कभी स्पर्श नही किया जा सकता । वह कहेगा—मेरे पास नाक है, सुघा कर बता दो कि प्रकाश कैसा है, पर यह भी नामुमकिन है । कैसे सुघाओगे ? न इसमे सुगध है, न दुर्गध । सच तो यह है कि यह पूरी तरह से गधमुक्त है अगर तुमने इसके लिए भी ना कह दिया, तो वह कहेगा, मेरे पास कान है, सुना दो । मै सगीत को सुन सकता हूँ, आवाज को सुन सकता हूँ तो प्रकाश को क्यो नही सुन पाऊँगा ? मेरे पास जीभ भी है, मुझे चखा दो ताकि मुझे प्रकाश का ज्ञान हो जाए ।

नही ! यह शक्य नही है । न सुघाना शक्य है, न दिखाना शक्य है, न सुनाना शक्य है और न ही स्पर्श करवाना ।

कहते है, बुद्ध के पास इसी तरह एक जन्माध व्यक्ति को लाया गया, जो कहता था कि दुनिया मे प्रकाश नही है । जब मै प्रत्येक तत्त्व का अनुभव कर सकता हूँ तो प्रकाश का क्यो नही ? सब लोग बुद्ध से कहने लगे—आप इसे प्रकाश के बारे मे समझा दे । बुद्ध ने कहा 'प्रकाश व्याख्या की वस्तु नही है । इसकी ऑखे ठीक करा दो, प्रकाश की अनुभूति स्वत हो जाएगी ।'

लोगो ने ऐसा ही किया । एक वैद्यराज जो नेत्र पटल की झिल्लियो को व्यवस्थित कर अधे को भी आखे देने की कला जानता था, उसके पास उस अधे का छ माह तक इलाज करवाया गया ।

अतत उसे दिखाई देने लगा । वह दौडा-दौडा आया बुद्ध के पास और कहने लगा, 'प्रभु ! आपकी कृपा से मुझे प्रकाश दिखाई देने लगा है।'

बुद्ध ने कहा—'चल, एक काम कर । अब तू प्रकाश को देख रहा है, इसे छुआ कर बता दे, सुघा कर या सुना कर वता दे ताकि मुझे

पता लग जाए कि प्रकाश क्या होता है।' उसने कहा, 'प्रभु ! यह तो अशक्य है। मै नही जानता कि इसकी व्याख्या मै कैसे करू।'

बुद्ध मुस्कुराए, कहने लगे, 'यही बात तो मै तुमसे कहना चाहता हूँ कि प्रकाश की तो केवल अनुभूति और उपलब्धि ही की जा सकती है, व्याख्या नही।' अगर व्याख्या की गई तो उसमे तोड मरोड होगी और अधकचरा ज्ञान, अज्ञान से भी बदतर है। क्या तुम उसे ज्ञान कहोगे? जब एक अधे की समझ मे यह आ जाए कि खीर, बगुले की गर्दन की तरह टेढी होती है, तो वह उस खीर की परिभाषा हमेशा 'टेढी खीर' ही करेगा। इसलिए कोई भी बुद्ध पुरुष अज्ञान के मार्ग से ज्ञान देने का प्रयास नही करेगे।

आज के सूत्र मे महावीर ने जिस सत्य की चर्चा की, मै भी उस सत्य की व्याख्या नही करूगा, न परिभाषाएँ दूगा। मेरी नजर मे सत्य केवल शून्य है। और शून्य को केवल वही व्यक्ति उपलब्ध कर सकता है, जिस व्यक्ति ने कोरे कागज मे भी सूत्रो को पढने की कला जानी है।

महावीर कहते है, 'सत्य मे सयम का वास है, तप का वास है, समस्त गुणो का वास है। जैसे समुद्र मत्स्य आदि समस्त जलचरो का उत्पत्ति स्थान होता है, वैसे ही सत्य समस्त गुणो का उद्गम स्थल है।' महावीर का यह वचन हमे बहुत कुछ सोचने के लिए मजबूर करता है। एक तपस्वी, सयमी व्यक्ति भी परमज्ञान को उपलब्ध करने के पश्चात अपने सदेश मे यही कह रहा है कि तप हो या सयम, सब कुछ सत्य मे है। जैसे पानी के अभाव मे मछली का अस्तित्व सभव नही है वैसे ही सत्य के अभाव मे धर्म और अध्यात्म की सभावना नजर नही आती।

सत्य की खोज मे, अगर सागर मे ऊपर-ऊपर तैरते रहे तो सिवा तिनको के कुछ भी हाथ लगने वाला नही है। डूबो, गहरे डूबो। बिना बोध के जो कुछ बाह्य आचरण की व्यवस्था की जा रही है, यह सब कुछ तैरना तो है, लेकिन उपलब्धि नही है। उपलब्धि गोताखोर को होती है। जितने अधिक गहरे उतरोगे, उतनी ही ज्यादा उपलब्धि होगी। अगर बाहर-बाहर तैरते रहे तो तिनके हाथ लगेगे और गहरे उतरे तो मोती। बाहर की आखे जो कुछ देख रही है, उसका अतिम चरण अधकार है और भीतर की आखो से जो कुछ देखोगे उसका अतिम

चरण प्रकाश है। यह हम पर निर्भर है कि हम जीवन की उपलब्धि अधकार के रूप मे चाहते है या प्रकाश के रूप मे। अगर उपलब्धि मे अधेरा चाहते हो तो बाहर की आखो को खुली रहने दो और अगर प्रकाश चाहते हो तो भीतर की आखे खोलो। यही अन्तश्चक्षु का विमोचन होगा। शिव के तीसरे नेत्र का उद्घाटन। सच मे वही जिसे महावीर प्रज्ञा-नेत्र कहते है। यह प्रज्ञा नेत्र ही वास्तव मे प्रज्ञादीप को प्रकट करता है। प्रज्ञादीप की निर्धूम ज्योति ही निर्वाण को उपलब्ध होती है। वह ज्योति, ज्योति शिखरो को सजाती है। विश्व उसकी युगो तक वदना करता है और सत्य उस दिये को सदा बाती प्रदान करता है।

□

दीप बनें देहरी के

"एक व्यक्ति वह है, जो केवल परमात्मा का नाम-स्मरण करता है और एक व्यक्ति वह है, जो परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है। इनमे यथार्थत. परमात्मा की उपासना वही कर रहा है, जो परमात्मा की आज्ञाओ का पालन कर रहा है। अपने कर्त्तव्यो को छोड, जो मात्र कृष्ण-कृष्ण रटता है, वह भला कृष्ण को कैसे पा सकेगा। आवश्यकता धर्म के कथन की नही, धर्म के परिपालन की है, क्योकि धर्म की रक्षा के लिये ही तो स्वय कृष्ण ने जन्म लिया था।"

साधना जीवन के रूपान्तरण का नाम है। ज्ञान और चारित्र का समन्वय ही जीवन का साधना-मार्ग है। क्रियाहीन ज्ञान और ज्ञानहीन आचरण सदैव अपूर्ण कहलाएगे। जहाँ बगैर ज्ञान की क्रिया अधेरे मे थेगले लगाना है, वही आचरण रहित ज्ञान, मात्र मस्तिष्क मे सूचनाओ का भार ढोना है।

महावीर के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि वे जन्म से ही मति, श्रुत और अवधि– तीन ज्ञान के धारक थे। जीवन के तीन दशक बीतने के बाद उनके सन्यास के लिये उठाये गये कदम यह सकेत देते है कि परम ज्ञान की प्राप्ति मात्र वेद, पिटक और आगमो का अध्ययन करने से नही, वरन् उन्हे जीवन मे आत्मसात् करने से है। महावीर और बुद्ध ने परमज्ञान उपलब्ध करने के लिये, न कही गुरुओ के पास जाकर प्रवज्या ग्रहण की और न ही किसी गुफा मे बैठकर शास्त्रो का अध्ययन किया। दोनो ने ही परम ज्ञान की उपलब्धि के लिये, आचार-शुद्धि को अनिवार्य माना और अपने जीवन मे ज्ञान और चारित्र का समवेत दीप प्रज्वलित करने के लिये अभिनिष्क्रमण किया।

महावीर ने बात-बात में शास्त्रो के कोरे आश्वासन और तर्क-बुद्धि लगाने वालो को सदैव फटकारा, क्योकि ऐसी स्थिति मे आचरण सत्य के आधार पर नही, अपितु शास्त्रो के आधार पर चलता है। शास्त्र हो या गुरु सभी मार्ग का दिशा निर्देश दे सकते है, लेकिन जीवन कल्प तभी होता है, जब व्यक्ति आत्म अनुभवो के आधार पर, अपनी पगडण्डी का निर्माण स्वय करता है, आत्मदीप बनकर अपने जीवन का मार्ग वह स्वय प्रशस्त करता है। जीवन निर्माण के लिए मात्र शास्त्र-अध्ययन ही पर्याप्त नही है, आवश्यकता सम्यक् आचरण की भी है। शास्त्रो से व्यक्ति सत्य ढूढ सकता है, लेकिन सत्य मे जी नही सकता। सत्य केवल भाषण तक सीमित हो यह ठीक नही है, सत्य आचरण मे भी होना चाहिए।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तुक्रियावान्पुरुष स विद्वान् ।
सुचिन्तित चौषध मातुराणा,
न नाम मात्रेण करोत्यरोगम् ॥

पडित नारायण कहते है, बहुत से लोग शास्त्र पढकर भी मूर्ख होते है। वास्तव मे विद्वान वही है, जो क्रियावान है। क्योकि चितित औषधि भी नाम मात्र से रोगी को निरोग नही कर देती है। काफी महत्वपूर्ण उदाहरण दिया है चितित औषधि का। तुम रोगी हो, पर तब तक रोग-मुक्त कैसे हो पाओगे जब तक ज्ञात औषधि का सेवन न होगा। मात्र औषधि का नाम रटने से या शास्त्रो के पाठ पढने से जीवन-कल्याण मुमकिन नही है। रोग-मुक्ति के लिये न केवल औषधि का ज्ञान आवश्यक है अपितु सेवन भी आवश्यक है। ससार-मुक्ति के लिए आवश्यक है, मुक्ति का ज्ञान और तदनुरूप आचरण।

मात्र ज्ञान ही जीवन-कल्प के लिये पर्याप्त होता, तो विज्ञान ने ऐसे-ऐसे यन्त्र विकसित कर दिये है, जिनमे सैकडो शास्त्रो के वचनो को रिकार्ड किया जा सकता है और हजारो पण्डितो के मस्तिष्क को इकट्ठा किया जा सकता है, पर उन यन्त्रो मे मात्र सूचनाओ का सग्रह ही होगा। उन यन्त्रो के लिये यह सभव नही है कि वे उन सूचनाओ के आधार पर किसी का जीवन-कल्प कर सके।

किसी वस्तु का नक्शे-किताब या सूचनाओ के आधार पर ज्ञान पाना अलग बात है, और प्रत्यक्ष मे उस वस्तु के दर्शन से प्राप्त होने वाली अनुभूति अलग चीज है। एक प्रोफेसर ध्यान और योग के बारे मे, चेतन और अवचेतन मन के बारे मे, प्रत्याहार और कुण्डलिनी-जागरण के सम्बन्ध मे घटो भाषण दे सकता है, लेकिन स्वय ध्यानमग्न नही हो सकता, योग मे जी नही सकता और कुण्डलिनी-जागरण कर नही सकता। षट्-चक्र भेदन के सम्बन्ध मे निबन्ध लिखकर स्वर्ण पदक पाने वाले व्यक्ति स्वय का एक चक्र का भेदन भी कर नही पाते। ये प्रोफेसर, विद्वान या पण्डित उस चम्मच की तरह है, जो हलुए को इस बर्तन से उस बर्तन मे तो डाल सकते है, किन्तु स्वय हलवे का स्वाद चख नही सकता। यह तो ठीक वैसे ही अपने सिर पर शास्त्रो का भार ढोन हुआ, जैसे गधा चन्दन का भार ढोता है। मैने सुना है, यूरोप मे किसी भी

छात्र का ज्ञान तब तक अधूरा माना जाता है जब तक उस ज्ञान को व्यक्ति अनुभवो के साथ घटित न कर ले । इसलिए वहाँ कोई छात्र जब विद्यालयीय ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब उसे यह सलाह दी जाती है, कि वह सुनी-सुनाई बातो का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए, विश्व भर की यात्रा करे ।

यह तो महावीर और बुद्ध भी प्रव्रजित होने से पूर्व जानते थे कि किसी को पीडा देना पाप है, झूठ बोलना पाप है, चोरी करना अपराध है और आवश्यकताओ से अधिक परिग्रह रखना अनुचित है । वे यह भी जानते थे कि दान और दया से पुण्य होता है । अहिसा और करुणा से ससार मे सुख का वातावरण फैलता है और प्यार व प्रेम से सामाजिक उच्छृखलता समाप्त होती है । पर जानने मात्र से पाप से निवृत्ति और पुण्य मे प्रवृत्ति सभव नही होती । जीवन मे मात्र सत्य का ज्ञान ही आवश्यक नही है अपितु ज्ञात सत्य का आचरण भी आवश्यक है । वह व्यक्ति अपने आपको सही सलामत कैसे रख पायेगा, जो यह जानते हुए भी अग्नि मे हाथ जलाता है, कि अग्नि मे हाथ डालने से
है । उसे सत्य का ज्ञान तो हो गया है लेकिन ज्ञा।
नही हो पाया है । इसलिए यह मत कहना
सत्य को जानने के लिये सन्यास लिया था ।
आचरण मे उतारने के लिये, उन्होने सन्यास

पहले ज्ञान और पीछे आचरण, 'पहलू ज्ञा।
सन्दर्भ मे कुछ और बाते कहना चाहता हूँ ।
पीछे नही है । ऐसा नही है की पहले शास्त्रो
उतारो । ऐसी बात होती तो विष्णु शर्मा कहा
किल शब्द शास्त्र ।' शास्त्रो का कोई अन्त ।
पढ़ते जाओगे, उतने ही सशय खडे होते जायेगे,
वुद्धि से भर दोगे । मात्र शास्त्रो का पठन, तर्क ,
देगा, पर जीवन सस्कार नही कर पायेगा । अगर
पहले शास्त्रो को पढ लूँ फिर आचरण मे उतारूगा, तो
की कोई कमी नही है । एक जन्म नही, सात-सात जन्मो
रहोगे, तो भी शास्त्रो का अन्त नही आयेगा । हमारे जीव
घन्टे शेष है, उससे भी कही अधिक ससार मे शास्त्र हैं । -
सोच कर स्वय को आचरण-शून्य न करे कि पहले नलीम।
को पढ लूँ फिर जीवन मे उतारूगा ।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तुक्रियावान्पुरुष स विद्वान् ।
सुचिन्तित चौषध मातुराणा,
न नाम मात्रेण करोत्यरोगम् ॥

पडित नारायण कहते है, बहुत से लोग शास्त्र पढकर भी मूर्ख होते है। वास्तव मे विद्वान वही है, जो क्रियावान है। क्योकि चितित औषधि भी नाम मात्र से रोगी को निरोग नही कर देती है। काफी महत्वपूर्ण उदाहरण दिया है चितित औषधि का। तुम रोगी हो, पर तब तक रोग-मुक्त कैसे हो पाओगे जब तक ज्ञात औषधि का सेवन न होगा। मात्र औषधि का नाम रटने से या शास्त्रो के पाठ पढने से जीवन-कल्याण मुमकिन नही है। रोग-मुक्ति के लिये न केवल औषधि का ज्ञान आवश्यक है अपितु सेवन भी आवश्यक है। ससार-मुक्ति के लिए आवश्यक है, मुक्ति का ज्ञान और तदनुरूप आचरण।

मात्र ज्ञान ही जीवन-कल्प के लिये पर्याप्त होता, तो विज्ञान ने ऐसे-ऐसे यन्त्र विकसित कर दिये है, जिनमे सैकडो शास्त्रो के वचनो को रिकार्ड किया जा सकता है और हजारो पण्डितो के मस्तिष्क को इकट्ठा किया जा सकता है, पर उन यन्त्रो मे मात्र सूचनाओ का सग्रह ही होगा। उन यन्त्रो के लिये यह सभव नही है कि वे उन सूचनाओ के आधार पर किसी का जीवन-कल्प कर सके।

किसी वस्तु का नक्शे-किताब या सूचनाओ के आधार पर ज्ञान पाना अलग बात है, और प्रत्यक्ष मे उस वस्तु के दर्शन से प्राप्त होने वाली अनुभूति अलग चीज है। एक प्रोफेसर ध्यान और योग के बारे मे, चेतन और अवचेतन मन के बारे मे, प्रत्याहार और कुण्डलिनी-जागरण के सम्बन्ध मे घटो भाषण दे सकता है, लेकिन स्वय ध्यानमग्न नही हो सकता, योग मे जी नही सकता और कुण्डलिनी-जागरण कर नही सकता। षट्-चक्र भेदन के सम्बन्ध मे निबन्ध लिखकर स्वर्ण पदक पाने वाले व्यक्ति स्वय का एक चक्र का भेदन भी कर नही पाते। ये प्रोफेसर, विद्वान या पण्डित उस चम्मच की तरह है, जो हलुए को इस बर्तन से उस बर्तन मे तो डाल सकते है, किन्तु स्वय हलवे का स्वाद चख नही सकता। यह तो ठीक वैसे ही अपने सिर पर शास्त्रो का भार ढोन हुआ, जैसे गधा चन्दन का भार ढोता है। मैने सुना है, यूरोप मे किसी भी

छात्र का ज्ञान तब तक अधूरा माना जाता है जब तक उस ज्ञान को व्यक्ति अनुभवो के साथ घटित न कर ले। इसलिए वहाँ कोई छात्र जब विद्यालयीय ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब उसे यह सलाह दी जाती है, कि वह सुनी-सुनाई बातो का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए, विश्व भर की यात्रा करे।

यह तो महावीर और बुद्ध भी प्रव्रजित होने से पूर्व जानते थे कि किसी को पीडा देना पाप है, झूठ बोलना पाप है, चोरी करना अपराध है और आवश्यकताओ से अधिक परिग्रह रखना अनुचित है। वे यह भी जानते थे कि दान और दया से पुण्य होता है। अहिसा और करुणा से ससार मे सुख का वातावरण फैलता है और प्यार व प्रेम से सामाजिक उच्छृखलता समाप्त होती है। पर जानने मात्र से पाप से निवृत्ति और पुण्य मे प्रवृत्ति सभव नही होती। जीवन मे मात्र सत्य का ज्ञान ही आवश्यक नही है अपितु ज्ञात सत्य का आचरण भी आवश्यक है। वह व्यक्ति अपने आपको सही सलामत कैसे रख पायेगा, जो यह जानते हुए भी अग्नि मे हाथ जलाता है, कि अग्नि मे हाथ डालने से हाथ जलता है। उसे सत्य का ज्ञान तो हो गया है लेकिन ज्ञान आचरण मे रूपान्तरित नही हो पाया है। इसलिए यह मत कहना कि महावीर और बुद्ध ने सत्य को जानने के लिये सन्यास लिया था। हकीकत मे ज्ञात सत्य को आचरण मे उतारने के लिये, उन्होने सन्यास लिया था।

पहले ज्ञान और पीछे आचरण, 'पहलू ज्ञान ने पीछे क्रिया'। मै इस सन्दर्भ मे कुछ और बाते कहना चाहता हूँ। इन दोनो मे कोई भी पहले पीछे नही है। ऐसा नही है की पहले शास्त्रो को पढो फिर जीवन मे उतारो। ऐसी बात होती तो विष्णु शर्मा कहा करते थे – 'अनन्त पार किल शब्द शास्त्र।' शास्त्रो का कोई अन्त नही है और जितने शास्त्र पढ़ते जाओगे, उतने ही सशय खडे होते जायेगे, अपने आप को तर्क बुद्धि से भर दोगे। मात्र शास्त्रो का पठन, तर्क-बुद्धि को परिपक्व कर देगा, पर जीवन सस्कार नही कर पायेगा। अगर यह सोचते रहोगे कि पहले शास्त्रो को पढ़ लूँ फिर आचरण मे उतारूगा, तो दुनिया मे शास्त्रो की कोई कमी नही है। एक जन्म नही, सात-सात जन्मो तक भी पढते रहोगे, तो भी शास्त्रो का अन्त नही आयेगा। हमारे जीवन के जितने घन्टे शेष है, उससे भी कही अधिक ससार मे शास्त्र है। इसलिये यह सोच कर स्वय को आचरण-शून्य न करे कि पहले भलीभाँति शास्त्रो को पढ लूँ फिर जीवन मे उतारूगा।

ज्ञान और आचरण के सम्बन्ध मे वैज्ञानिको के मार्ग को अपनाना पडेगा। वैज्ञानिको के लिए सत्य वह नही है, जो कल जाना जायेगा। वहॉ वह सत्य है, जो आज जाना गया है। वहॉ आज का ज्ञान, आज का सत्य है और कल का ज्ञान, कल सत्य होगा। भले ही आज का सत्य कल झुठलाया जाये। पर आज तो वही सत्य है, जो आज जाना है, इसलिए वैज्ञानिको की भाषा मे यह कभी नही लिखा जाना चाहिये कि कल जो जाना गया वह मिथ्या था। कल तक जितनी खोज की गयी थी, उस आधार पर कल का सत्य था और आज जितनी खोज आगे बढी है, उस आधार पर आज का सत्य है। अगर आज की खोज के आधार पर हम कल के सत्य को झुठला सकते है तो, आने वाले कल की खोज के आधार पर आज की खोज को भी झुठलाया जा सकता है। इसलिए सत्य की खोज का कोई अन्त नही है। आज जो जाना उसे आज का सत्य मानकर जीवन मे स्वीकार करे और कल जो जाने, उसे कल स्वीकार करे। जीवन मे ज्ञान और चारित्र की धारा, एक साथ बहनी चाहिये।

आज का, महावीर का सूत्र उन्ही लोगो को जगाने के लिये है जो, मात्र उपदेश और भाषण देते है, शास्त्रीय वचनो की दुहाई देते है, आचरण को दर किनार कर। महावीर का सूत्र है—

भणन्ता अकरेन्ताय, बन्धमोक्ख पदूण्णिणो।
वायविरियमेतेण, समासासेन्ति अप्पय ॥

जो बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्तो के बारे मे कहते तो बहुत कुछ है, किन्तु करते कुछ भी नही, वे ज्ञानवादी केवल वाणी की वीरता से ही अपने आपको आश्वासन देते है।

महावीर कहते है, 'जो बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्तो के बारे मे कहते तो बहुत है, किन्तु करते कुछ भी नही।' इस बात को गहराई से समझे। दुनिया मे अब तक ससार, सन्यास और समाधि— इन तीनो के बारे मे इतने ग्रन्थ लिखे गये है, इतने भाषण दिये गये है कि यदि उन्हे जिन्दगी भर पढते रहो, सुनते रहो तो भी अन्त नही आयेगा। आचरण शून्य उपदेशक इन सिद्धान्तो के बारे मे चर्चा तो खूब कर लेगा, तर्क काफी दे देगा, पर ससार से नही छूट पायेगा। वह सबको समझायेगा ससार छोडो, क्रोध छोडो, मान छोडो, माया छोडो, कटु भावनाओ का त्याग करो। लेकिन स्वय इन्ही मे डूबा रहेगा। मच पर घटो दहेज विरोधी

भाषण और घर जाकर अपनी ही बहुओ को जलाना, धर्म-सभाओ मे शराब के विरोध मे घटो भाषण और शाम को मधुशाला मे पहुँचना, न्यायालय के आगे जाकर सत्याग्रह का आन्दोलन और रात को वही तस्करी का व्यवसाय, जीवन की दोहरी नीति नही तो और क्या है। ये वो इन्सान है, जिनको दो मुँहा मानव की सज्ञा दी जानी चाहिये।

क्या मिलिये ऐसे लोगो से, जिनकी सूरत छिपी रहे।

नकली चेहरा सामने आये, असली सूरत छिपी रहे।

दुनिया ऐसे लोगो से भरी हुई है, जिनकी कथनी कुछ और करनी कुछ है।

आज के सूत्र मे, महावीर ने, उन लोगो को लताडा है जो केवल भाषणबाजी मे विश्वास रखते है। वेद व्यास ने भी ऐसे लोगो का जीवन, शून्य माना है। महाभारत मे वे कहते है–

श्रृणुयक्ष कुलतात, न स्वाध्यायो न श्रुतम्

कारण हि द्विजत्वेचवृत्त मेव न सशय ।

ब्राह्मणत्व की असली परिभाषा दी है वेदव्यास ने। ब्राह्मणत्व मे न कुल कारण है, न स्वाध्याय और न शास्त्र श्रवण। निस्सन्देह ब्राह्मणत्व का हेतु आचरण है।

वेद व्यास ने बात पते की कही है। ब्राह्मणत्व का हेतु आचरण। ब्राह्मण अर्थात जो ब्रह्म मे रमण करे, बह्म मे जीये। उसे ब्राह्मण मत समझना जो ब्रह्म की परिभाषा करे। बह्म की परिभाषा हर कोई कर देगा पर ब्रह्म मे रमण, इस सन्दर्भ मे वह शून्य मिलेगा।

गॉधी कहा करते थे, एक मन भाषण की अपेक्षा एक कण आचरण श्रेयकर है। महावीर के इस सूत्र से, उन राजनेताओ को भलीभॉति सीख लेनी चाहिये जो, मात्र अपने वाक् चातुर्य के कारण भोली-भाली जनता को, हर पाच साल बाद फसा लेते है। वे स्वय तो अधकार मे जीते ही है, जनता को भी उसी अधियारे मे जीने के लिये अभ्यस्त कर देते है। इसलिये नेता शब्द, जो कभी सम्मान का सूचक माना जाता था, बडे-बडे लोग चाहते थे कि हमे कोई नेता कहे, आज गाली का रूप धारण कर रहा है। समाज मे यदि किसी को नेता कह दो तो वह स्वय को अपमानित महसूस करेगा। आजकल नेता का अर्थ लगाया जाता है–जो दादागिरी दिखाते है या कोरी भाषणबाजी करते है।

लच्छेदार भाषणो से किसी को कुछ समय के लिये तो बाधा जा सकता है, लेकिन सदा के लिये नही । भाषणो मे कहना कुछ और व्यवहार मे उतारना कुछ, यह हमारे व्यक्तित्व के खोखलेपन का परिचायक है ।

मैने सुना है, एक सभा मे एक युवक अण्डा सेवन के विरोध मे भाषण दे रहा था । अब तक के पन्द्रह मिनट के भाषण मे लोगो ने पच्चीसो दफा तालिया बजायी होगी । लेकिन लोगो की ऑखे तब फटी की फटी रह गयी जब युवक द्वारा पसीना पोछने के लिये रूमाल निकालने पर जेब से एक अण्डा बाहर निकल पडा ।

प्राय भाषणबाजी करने वाले लोग ऐसे ही जीवन-विरोधी होते है। ये न केवल औरो को अपितु स्वय को भी कोरे आश्वासन देते है । क्षमा पर घटो भाषण देने वाले लोगो का, पलभर मे मैने दूध उफनते देखा है । इसलिए महावीर कहने पर कम और करने पर ज्यादा जोर देते है। ज्ञान और आचरण दोनो को एक साथ जीवन मे उतारने के लिये प्रेरणा देते है । भला एक चक्के से कभी रथ चल सकता है, 'न हु एग चक्केण रहो पयाई ।'

महावीर ने आज के सूत्र मे दो शब्दो का प्रयोग किया – बन्ध और मोक्ष । दोनो शब्दो के अन्तरग मे जाना है । ये दोनो जीवन मे एक साथ घटित होते है । बन्धन तोडने के बाद मोक्ष मिलता हो, ऐसी बात नही है । हकीकत मे बन्धन-मुक्ति ही, मोक्ष है । लोग बधन और मुक्ति की चर्चा तो काफी कर लेते है, पर वे न तो अपने बधनो को पहचान पाते है और न ही मोक्ष पर विश्वास कर पाते है । बधन और मोक्ष इतने सूक्ष्म है कि इन्हे दिखाया नही जा सकता, मात्र अनुभव किया जा सकता है –

> जे पद श्री सर्वज्ञे दीठू ज्ञान मॉ
>
> कही शक्या नही पण ते श्री भगवान जो ।
>
> तेह स्वरूप ने अन्यवाणी तो शू कहे ।
>
> अनुभव गोचर मात्र रह्यू ते ज्ञान जो ।

जिस मोक्ष की, स्वय सर्वज्ञ ने अपने ज्ञान मे देखकर भी व्याख्या नही की, भला एक सामान्य व्यक्ति उसकी व्याख्या कैसे कर पाएगा । यह ज्ञान मात्र अनुभव गोचर है ।

पहला शब्द है बन्धन, व्यक्ति बधा है। महावीर इस सत्य की पहचान कराना चाहते है कि तुम बधे हो। देखो इधर-उधर आखिर किस से बधे हो। किसी ने तुम्हे नही बाधा है, तुम अपने आप बधे हो। यह नागपाश के बधन से भी मजबूत बधन है, जिसे महावीर ने मोहपाश कहा है। नागपाश के बन्धन को तोडना मुश्किल नही है, लौह-श्रृखलाओ को भी एक झटके मे तोडा जा सकता है, लेकिन उन सूत के धागो को तोडना दुष्कर है, जिन्होने मोहपाश का रूप धारण कर लिया है। सम्पूर्ण ससार का त्याग करने वाला आर्द्रकुमार' मोह के कच्चे धागो के सामने पस्त हो जाता है। यह बधन और कुछ नही, मात्र आसक्ति है, गहरा सम्मोहन है। यहॉ व्यक्ति सच को झूठ और झूठ को सच मानने के लिये भी तैयार हो जाता है। बचपन से जवानी और जवानी से बुढापा, इस यात्रा मे व्यक्ति स्वय को ऐसे, मकडी के जाल मे फसा देता है, जिस का निर्माण वह स्वय करता है और निकलना उसके वश मे नही होता है। यही ससार की आसक्ति है, बधन है, सम्मोहन है, लालसा और तृष्णा है। इनसे मुक्ति का नाम ही मोक्ष है।

एक युवक किसी फकीर के पास रोज-ब-रोज जाया करता था। एक दिन उसने फकीर से निवेदन किया, फकीर साहब ! मै भी फकीर होना चाहता हूँ। लेकिन मेरे लिये सभव नही है। मेरी मॉ कहती है कि तुम फकीर हुए तो मै आत्महत्या कर लूँगी। पिता कहता है, फॉसी के फन्दे पर लटक जाऊँगा। पत्नी कहती है कि रेल की पटरी पर सो कर खुदकशी कर लूँगी। कहे, घर कैसे छोडू ?

फकीर ने युवक को कुछ समझाया और रवाना कर दिया। युवक घर पहुँचा, बीच ऑगन मे जाकर निश्चेष्ट हो गया। परिवार के सदस्य डॉक्टर लेकर आये। लेकिन उन्होने भी हाथ छिटक दिये। युवक को मृत घोषित कर दिया गया।

अगले दिन सुबह शव यात्रा की तैयारियॉ हो रही थी। चारो ओर गमगीन माहौल था। घर के एक कोने मे बैठी युवक की पत्नी छाती पीट-पीट कर विलाप कर रही थी और वह फकीर पहुॅच गया। सभी लोग फकीर के पास आये बोले, 'फकीर साहब ! आपका चेला मर गया। आप जैसे-तैसे इसको वापस जीवित कर दीजिये।'

फकीर युवक के पास गया। कुछ नाडिया टटोलने का अभिनय किया, फिर कहा 'इस युवक को जीवित तो किया जा सकता है,

पर ।'

'पर क्या, आप जो कहे, वह करने को मै तैयार हूँ, पर फकीर साहब ! मेरे बेटे को जीवित कर दीजिये ।' मॉ ने फकीर के चरण पकडते हुए कहा ।

फकीर मुस्कराये, कहा, 'इस युवक को जीवित तो किया जा सकता है । पर आयी हुई मौत कभी खाली हाथ नही जाती । इस युवक के पीछे कोई मरने को तैयार हो, तो मै इसे जीवित कर सकता हूँ ।'

फकीर की बात सुन सब एक दूजे से पीछे खिसकने लगे । सभी के ऑसू सूख गये । फकीर ने सबसे पहले मॉ से कहा, 'तुम अपने पुत्र के पीछे मर जाओ ।'

मॉ बोली, 'यह कैसे सभव है । मेरा एक बेटा तो नही है, पॉच-पॉच बेटे है । आखिर किस-किस के लिये मरूगी ?'

फकीर ने पिता से पूछा । वे कहने लगे, 'मरे के पीछे मरा थोडी ही जाता है ।'

युवक की पत्नी ने यह कहकर हाथ छिटक दिये कि जो चले गये है, उन्हे जाने दे । मै अपनी जिन्दगी जैसे-तैसे चला लूगी ।

फकीर ने वहॉ खडे प्रत्येक व्यक्ति से पूछा, लेकिन युवक के लिये मरने को कोई तैयार नही हुआ । फकीर युवक के पास गया । एक चाटा मारा, कहा, 'बोल, तू कहता था तेरे घर छोडने पर सारा परिवार खुदकशी कर लेगा । देख लिये, ससार के बधन, कोई तुमसे नही बधा हैं । तुम बधे हो सबसे । काश ! इनसे छूट कर तुम अपने आप से बध पाते ।'

युवक शर्मिन्दा था । फकीर के पॉव दरवाजे की ओर बढ गये । लोगो ने देखा युवक फकीर का अनुसरण कर रहा था । दोनो निकल गये, पर कोई कुछ बोल न पाया ।

महावीर इसे बधन कहते है । इस बधन मे व्यक्ति स्वय जकडा है, दोष मढता है, दूसरो के सिर पर । यदि ये बन्धन बाहर के होते तो हर कोई समझ लेता, पर ये भीतर के है । मै आपको वह सदेश देना चाहता हूँ, जिससे आप अपने बन्धनो को समझ सके और अपनी जन्म-जन्म की जजीरो को तोड सके । इसलिए महावीर ने बधन शब्द के साथ ही मोक्ष शब्द का प्रयोग किया, एक से छूटना है और दूसरे मे प्रवेश करना

है। बधन वह है, जहॉ पदार्थ भावनाओ की दृढता है, और मोक्ष वह है जहॉ से वासनाओ की क्षीणता है। जैसे एक पॉव आगे बढाने से पीछे का स्थान छूट जाता है, ससार ही सन्यास बन जाता है, वैसे ही बधन और मोक्ष की प्रक्रिया है।

बन्धन और मोक्ष लोग इनमे चूक जाते है। मै देखता हूॅ लोग मोक्ष की चर्चाए करते रहते है। मोक्ष कहॉ है ? कैसा है ? क्या स्वरूप है उसका ? पता नही कैसे-कैसे प्रश्न खडे कर देते है ? जबकि मोक्ष की न तो चर्चा की जानी चाहिये और न ही व्याख्या, यह तो मात्र अनुभव गोचर है। अगर चर्चा करना चाहते है, तो बधन की चर्चा करो, अगर विचारविमर्श करना चाहते हो, तो वासना का करो, अगर प्रश्न खडे करना चाहते हो अपनी तृष्णा पर करो क्योकि ये सब प्रत्यक्ष है। इनसे दु खी हो, सत्रस्त हो, दबे आये हो। मोक्ष उसी स्थिति का नाम है जहॉ इनसे छूट जाओगे। बधन छूटा कि मुक्ति हुई। मरने के बाद मुक्ति मिलती हो ऐसा न समझे, मृत्यु के उपरान्त तो निर्वाण होता है। इसलिए महावीर और बुद्ध जैसे मनीषियो के लिए, जीवित अवस्था मे भी 'मुक्त-पुरुष' शब्द का प्रयोग किया गया। 'मुक्त-पुरुष' का अर्थ है, वह व्यक्ति जिसने गिरा दिये है अपने बधन, जो निकल आया है ससार के कारागृह से।

ससार के जितने भी धर्म-शास्त्र है, उपदेष्टा है, चिन्तक या दार्शनिक है, अगर उनके सम्पूर्ण दर्शन और चितन का सार ढूढे तो इन दो शब्दो मे निहित है। ये दो शब्द ऐसे है, जिन पर जितने घटे बोलना चाहो बोल सकते हो, इनमे बधन को दु ख रूप समझे और मोक्ष को सुख रूप। 'बधन और मोक्ष के सिद्धान्तो के बारे मे लोग चर्चा करते है।' महावीर कहते है, इन पर केवल चर्चा नही करनी चाहिये, इनको अमल मे लाना चाहिये। चित्त और चैत्य–विषय-वासनाये जब इन दोनो का सबध जुडता है, तब व्यक्ति बधन मे जकड जाता है और जब इन दोनो का विभाजन होता है, चित्त, चिता-मुक्त हो जाता है और चैत्य गिर जाता है, तब साधक मोक्ष की अगडाई लेता है। धीरे-धीरे सकल्प गिर जाते है और मुक्ति साधक की हथेली मे होती है।

महावीर बधन और मोक्ष की बाते बताते है। हकीकत मे महावीर ने मोक्ष की चर्चाए कम की है, बधन पर अधिक प्रकाश डाला है। इसलिए उन्होने पहला शब्द दिया, बधन और उसके बाद मोक्ष।

महावीर चिकित्सक की भाति न केवल लोगो को रोगो की जानकारी देते है अपितु उनके निवारण के लिए औषधि भी देते है। महावीर पहले दु ख की पहचान कराते है। यह बताते है कि तुम दु खी हो, जिन तत्त्वो से दु खी हो वे सब नश्वर है। नश्वर है तुम्हारी आयु, चचल है तुम्हारा यौवन और चपल है भोग-विलास। इन सब मे सुख ढूढ रहे हो। ये सब तो दु ख-रूप है, इनमे वैसा ही कल्पित आनद मिलता है जैसा हड्डी चूसने से, कुत्ते को।

महावीर कहते है, 'मै दु ख छुडाना चाहता हूँ और सुख दिलाना चाहता हूँ, पर तब तक सुख कैसे पा सकोगे जब तक दु ख से अपने पाव को बाहर नही निकालोगे। तब तक कैसे स्वच्छ हो सकोगे, जब तक कीचड से स्वय को उपरत नही कर लोगे।

महावीर बधन की चर्चा कर रहे है। लहुलुहान दुनिया को देख रहे है, जहाँ सिवा गिला और शिकवा के कुछ नही है। जिसे हम जीवन की असलियत समझ बैठे है, उससे कभी प्रेम और शाति के स्रोत नही बहेगे। यह तो रेगिस्तान मे हरियाली ढूढने का काम होगा। मुक्ति, मात्र देह मुक्ति ही नही है, मुक्ति अन्तर के बन्धनो को तोडने का नाम है। बाहर के बन्धनो से छुटकारा हर किसी के लिए सहज है, लेकिन भीतर के बधनो से छूटना, इसका नाम मुक्ति है, मोक्ष है, निर्वाण है। निर्वाण, ज्योति की उस स्थिति का नाम है, जहॉ ज्योति तो रहती है पर निधूर्म। मुक्ति सकोचन नही है, मुक्ति विस्तार है, शलाकाओ से मुक्ति है। बधन मे वधा इन्सान किसी एक मे प्यार ढूढेगा और मुक्तपुरुष सृष्टि के हर अश मे, हर कोण मे –

दिल को लहू लुहान करे, शायद प्यार यही है।
जीना क्या बस मरते रहे, शायद प्यार यही है।
सब कुछ पाने के चक्कर मे जाने कहाँ-कहाँ जाए,
खाली हाथ ही लौट चले, शायद प्यार यही है।
नखलिस्तानो की हरियाली, जाने कब और कहाँ मिले।
सहराओ मे सफर करे, शायद प्यार यही है।
बादल बनकर रहे उमडते, बस्ती-बस्ती नगर-नगर
प्यासी रेत मे सफर करे, शायद प्यार यही है।

हिग्नो जैसे मन-मन भटके, लौटे फिर बेबस
अपनी ही कस्तूरी खोजे, शायद प्यार यही है ।

बधन को तोडकर विराट होना, यही तो जिदगी की विराटता है । जो बधन मे है, वह परतत्र है और जो बन्धन-मुक्त है, उसी को स्वतत्र कहा जा सकता है । देश को स्वतत्र कराना फौलादी लोगो का काम है, पर अपने आपको स्वतत्र करना, उससे भी अधिक हिम्मत का काम है। अग्रेजो से मुक्त होने वाले हम, क्या क्रोध, मान, माया और वासना से मुक्त हो पाये है ? दुनिया को जीतने की बजाय अपने आपको जीतना ज्यादा दुष्कर, पर श्रेयस्कर है । विश्व-विजेता सिकन्दर क्या अत मे अपने-आपसे नही हारा था ? सिवा एक कण गम के अलावा वह साथ क्या ले जा पाया ? इसलिए विज्ञान-भिक्षु कहते है–

न मोक्षो नभस पृष्ठे न पाताले भूतल ।
सर्वाशासक्षये चेत क्षयो मोक्ष इति श्रुत ॥

मोक्ष न तो गगनतल मे है, न पाताल मे है और न पृथ्वी पर है । सब आशाओ का क्षय होने पर, चित्त का क्षय, मोक्ष कहा गया है । विज्ञान-भिक्षु बडी रहस्य भरी बात कह रहे है । अब तक यही सुना है कि मोक्ष गगनतल मे है, स्वर्ग गगन के नीचे है और उससे नीचे ससार है और नरक उससे भी नीचे है । हकीकत मे तो जब हम कुण्ठा ग्रस्त होते है, तब नरक मे जीते है । जब परिवार के बीच होते है तब ससार मे जीते है, इसलिए जीवन-मुक्ति शब्द का प्रयोग मिलता है । बनादास कहते थे – 'जीवित मुक्ति नही पावे मुए मुक्ति भ्रम कहिये ।' जो व्यक्ति जीवित अवस्था मे मुक्ति नही पा सकता है, मरकर वह कैसे पायेगा । हकीकत मे मुक्ति जीवित अवस्था मे ही मिलती है, मरकर तो निर्वाण मिलता है । कर्म मुक्ति जी कर पायी जाती है, मरकर नही ।

महावीर कहते है, 'जो बधन और मोक्ष के सिद्धान्तो के बारे मे कहते तो बहुत कुछ है पर करते कुछ भी नही ।' इसे तुलसी के शब्दो मे ऐसे समझे– 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते, नर न घनेरे' उपदेश हर कोई दे सकता है, हर विषय पर दे सकता है, लेकिन जीवन मे उन सिद्धान्तो को अपनाना, हर किसी के बलबूते की बात नही है । महावीर ऐसे लोगो के लिये ज्ञानवादी शब्द का प्रयोग करते है । वे केवल ज्ञान मे जीते है, ज्ञान का भार ढोते है और जिन्दगी की

अन्तिम घडी तक भी शास्त्रो के भार से स्वय को मुक्त नही कर पाते–'पोथी पढ-पढ जग मुआ, पडित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का, पढै सो पण्डित होय ।'

महावीर, कबीर, तुलसी ये सब उन लोगो को लताड रहे है, जो मात्र व्याकरण के सूत्र रट रहे है, शास्त्रो का भार ढो रहे है । महावीर ऐसे लोगो के लिए, ज्ञानवादी शब्द का प्रयोग करते है । ज्ञानवादी वाद-विवाद कर लेगे, शास्त्रार्थ मे जीत जायेगे, पर जीवन फिर भी खोखला का खोखला ही रह जायेगा । लड्डू-लड्डू कहने से अगर उदर-पूर्ति हो जाती, तो ससार भर की सारी मिठाई की दुकानो पर ताला लग जाता । उदरपूर्ति नामोच्चारण मात्र से नही, भोजन करने से होती है । वे लोग कैसे उदर-पूर्ति कर पायेगे, जो केवल नाम ही रटते रहते है । ईसा कहा करते थे–'वह हर कोई जो ईसा-ईसा पुकारता है, स्वर्ग के राज्य मे प्रवेश नही कर पायेगा । स्वर्ग वह पायेगा, जो परम पिता की इच्छानुसार काम करता है ।'

एक व्यक्ति वह है, जो केवल परमात्मा का नाम-स्मरण करता है और एक व्यक्ति वह है, जो परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है । इनमे यथार्थत परमात्मा की उपासना वही कर रहा है, जो परमात्मा की आज्ञाओ का पालन कर रहा है । अपने कर्त्तव्यो को छोड, जो मात्र कृष्ण-कृष्ण रटता है, वह भला कृष्ण को कैसे पा सकेगा । आवश्यकता धर्म के कथन की नही, धर्म के परिपालन की है, क्योकि धर्म की रक्षा के लिये ही तो स्वय कृष्ण ने जन्म लिया था ।

सूत्र मे कहा, 'ज्ञानवादी केवल वाणी की वीरता से ही अपने आपको आश्वस्त करते है ।' वाक् चातुर्य तो हर कोई हासिल कर सकता है, पर जीवन-सस्कार हर किसी के हाथ की बात नही है । जो केवल वाणी की वीरता मे जीते है, अगर जीवन निर्माण की प्रतियोगिता आयोजित की गई तो वे ज्ञानवादी पराजित हो जायेगे । वे अगर कभी जीत भी पायेगे तो केवल गप्पें हॉकने मे । ऐसी-ऐसी गप्पे हाकते है लोग, अगर सुनो तो हसते रह जाओगे । आते है 'तूफान' मे और कहेगे 'राजधानी' से आया हूॅ । प्लेट–फार्म पर उतरेगे 'पैसेन्जर' से और कहेगे 'शताब्दी' से आया हूॅ । अपनी मान मर्यादाओ को बढाने के लिये लोग इतना सफेद झूठ बोल जाते है, जिनका उनके जीवन के साथ कोई सम्बन्ध ही नही है । वे केवल कह सकते है, कर नही सकते । वे स्वर्ण पदक

करते कुछ भी नही वे केवल अपने आपको आश्वासन दे रहे है।'

दुनिया मे दो तरह के वीर होते है - एक तो वचनवीर और दूसरे कर्मवीर। वचनवीर, कर्मवीर हो यह कठिन है। सच तो यह है कि कर्मवीर, वचनवीरता मे विश्वास ही नही रखते। ऐसे लोग जबान से नही, आचरण से ही अपनी बात को व्यक्त करते है।

आज जब राजनेताओ को सभी लोग कथनी-करनी मे फर्क रखने वाले मानते है, वहॉ गाधीजी के प्रति हर कोई आदर्श भावना रखता है। उनकी राजनीति, महत्वाकाक्षा की आपूर्ति नही वरन् राष्ट्रनीति रही। राष्ट्र के लिए जिये, खुद एक राष्ट्र बनकर जिये। नतीजतन, एक राजनेता होकर भी दुनिया की नजरो मे महात्मा बने। विदुर, चाणक्य और गाधी तीनो लोग अलग-अलग समय मे हुए, पर राष्ट्र के लिए नैतिकता को आत्मसात् करने वाले हुए थे।

विश्व ऐसे कर्मवीरो को, गाधियो को सदा सम्मान देता रहेगा। कहकर करना, करके कहना और करने को ही कहना मानना, जीवन के अलग-अलग रूप हुए। तीनो के अपने-अपने दायरे और प्रभाव है, अब यह आप पर है कि आपको कौन-सा रूप अपने लिए स्वीकार्य लगता है।

□